ISSN No. 2582-9548

nbt.india
एकः सूते सकलम्

# पुस्तक संस्कृति

साहित्य और संस्कृति की द्विमासिकी

वर्ष - 10 ◆ अंक - 5 ◆ सितंबर - अक्तूबर 2025 ◆ मूल्य ₹40.00

● नदी संस्कृति और मानव–जीवन ● अनुवाद : एक सांस्कृतिक सेतु

बालिका शिक्षा से दीप्त हो रही दुनिया ● साक्षर बनता देश ● बिहू–असम का प्राणोत्सव

# चिनार पुस्तक महोत्सव का दूसरा संस्करण : विचारों, स्मृतियों एवं लिखित शब्दों का उत्सव

श्रीनगर स्थित शेर-ए-कश्मीर इंटरनेशनल कन्वेंटर सेंटर में आयोजित, 02-10 अगस्त, 2025 तक चलने वाला, चिनार पुस्तक महोत्सव का दूसरा संस्करण अत्यंत भव्य रूप में सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। महोत्सव का उद्घाटन माननीय शिक्षा मंत्री, भारत सरकार श्री धर्मेंद्र प्रधान जी के हाथों हुआ। इस अवसर पर जम्मू-कश्मीर के उपराज्यपाल माननीय श्री मनोज सिन्हा की गरिमामयी उपस्थिति रही। साथ ही, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष श्री मिलिंद सुधाकर मराठे, इंडियन काउंसिल ऑफ हिस्टोरिकल रिसर्च के अध्यक्ष प्रो. राघवेंद्र तंवर, कश्मीर के डिवीजनल कमिश्नर श्री विजय बिधुरी, एनबीटी के निदेशक श्री युवराज मलिक, नेशनल काउंसिल फॉर प्रमोशन ऑफ उर्दू लैंग्वेज के डायरेक्टर डॉ. मो. शम्स इकबाल और चिनार पुस्तक महोत्सव के मुख्य संयोजक डॉ. अमित वांचू ने भी इस महोत्सव की शोभा बढ़ाई।

अपने बीज वक्तव्य में माननीय शिक्षा मंत्री ने हमारी बौद्धिक संपदा की पुनर्खोज और मौजूदा समय के अकादमिक विचारों के साथ उनके समावेशन में किताबों, शिक्षा और ज्ञान के महत्व पर जोर दिया, साथ ही इस बारे में प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के 'विजन' का भी उल्लेख किया। उन्होंने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत और जम्मू-कश्मीर प्रशासन को चिनार पुस्तक महोत्सव को राज्य का एक स्थायी साहित्यिक आयोजन बनाने की भी

सलाह दी। उन्होंने सुझाव दिया कि कश्मीर के साथ-साथ जम्मू में भी प्रति वर्ष इसे आयोजित किया जाना चाहिए। उन्होंने भरोसा जताया कि यह प्रयास जम्मू-कश्मीर में एनबीटी-लाइब्रेरी और पठन-पाठन एक आंदोलन का रूप लेगा, जो पूरे जम्मू-कश्मीर में पुस्तकों, साहित्य, भाषा और संस्कृति को शामिल करेगा। उन्होंने राष्ट्रीय पुस्तक

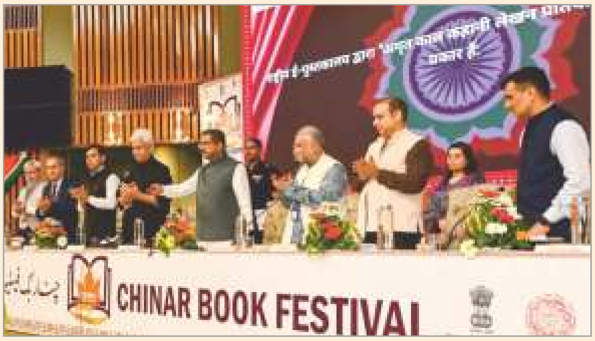


न्यास की ओर से शुरु किये गए डिजिटल प्लेटफॉर्म ई-पुस्तकालय की भी सराहना की, जहाँ पर पाठक विविध भाषाओं की हजारों पुस्तकों को निःशुल्क पढ़ सकते हैं।

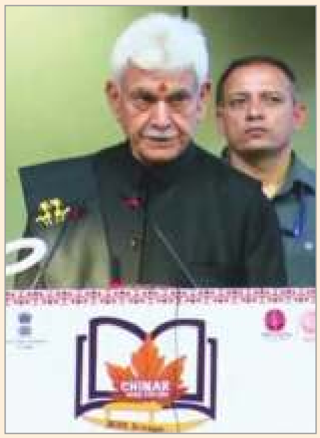

चिनार पुस्तक महोत्सव की प्रशंसा करते हुए जम्मू-कश्मीर के उपराज्यपाल माननीय श्री मनोज सिन्हा ने युवा पीढ़ी को भारत की प्राचीन बौद्धिक संपदा, संस्कृति और वैज्ञानिक धरोहर से जोड़ने की सराहना की। उन्होंने बताया कि वैश्विक ज्ञान परंपरा में भारत की उल्लेखनीय उपस्थिति रही है, जिसमें कश्मीर का योगदान अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों के पुनरुद्धार और उन्हें मुख्य धारा की अकादमिक चर्चाओं में शामिल करने पर बल देते हुए कहा कि पुस्तकें न केवल सोच विकसित करती हैं, बल्कि युवाओं में विवेक और जागरूकता भी उत्पन्न करती हैं।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद मराठे ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि ऐसे समावेशी पुस्तक मेलों से पाठकों और पुस्तकों को जोड़ने का प्रयास सराहनीय है। उन्होंने पूरे भारत में पठन-संस्कृति को बढ़ावा देने के एनबीटी के संकल्प को दोहराया।

प्रो. रघुवेन्द्र तंवर ने चिनार जैसे साहित्यिक आयोजनों को ऐतिहासिक विमर्शों के पुनरुद्धार और अकादमिक संवादों के लिए जरूरी बताते हुए कहा कि जम्मू-कश्मीर की बौद्धिक परंपराओं को भारत के ऐतिहासिक विमर्श का हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

*प्रधान संपादक*
**प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे**

*संपादक*
**दीपक कुमार गुप्ता**

*संपादकीय सहयोग*
**अल्पना भसीन, विजयलक्ष्मी पाण्डेय**

*विज्ञापन एवं प्रसार*
**जनसंपर्क अनुभाग**

*उत्पादन*
**अनुज कुमार भारती, पवन दुबे**

*चित्रांकन*
**अनिमेष देबनाथ**

*सज्जा/डिजाइन*
**ऋतुराज शर्मा, समरेश चटर्जी**

*सदस्यता शुल्क*
**व्यक्तियों के लिए**
एक प्रति : ₹ 40.00
वार्षिक : ₹ 225.00
(शुल्क भारत के लिए मान्य)

*संपादकीय पत्र-व्यवहार*
**संपादक**
पुस्तक संस्कृति
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
पता : 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया,
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
फोन : 011-26707876
ई-मेल: editorpustaksanskriti@gmail.com

प्रकाशक व मुद्रक अनुज कुमार भारती द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया (राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत) 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070 के लिए प्रकाशित और सालासर इमेजिंग सिस्टम्स, ए-97, सेक्टर-58, नोएडा-201301 (उत्तर प्रदेश) से मुद्रित।

*संपादक*
**दीपक कुमार गुप्ता**
**सर्वाधिकार सुरक्षित :** प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक और प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित रचनाओं के विचार से प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे।

**ISSN NO. 2582–9548**

# पुस्तक संस्कृति

**साहित्य एवं संस्कृति की द्विमासिकी**

वर्ष-10; अंक-5; सितंबर-अक्तूबर, 2025

## इस अंक में

संपादकीय — *प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे* 2
भाषा — **भारत को चाहिए भाषा-स्वराज्य**—*विजयदत्त श्रीधर* 3
संस्कृति — **नदी-संस्कृति और मानव-जीवन**—*डॉ. राजरानी शर्मा* 6
यात्रा-वृत्तांत — **भारत की पैराग्लाइडिंग राजधानी बीड़ बिलिंग**—*प्रताप सहगल* 9
साहित्य — **दिनकर : समग्रता में समझने की जरूरत**—*सुधांशु रंजन* 12
पठन संस्कृति — **गाँव के पुस्तकालय ने बदला जीवन**—*राजेन्द्र उपाध्याय* 15
अनुवाद कला — **अनुवाद : एक सांस्कृतिक सेतु**—*डॉ. दामोदर खड़से* 17
साक्षरता — **साक्षर बनता देश**—*विनोद दास* 20
प्रवासी साहित्य — **हिंदी साहित्य का एक और विमर्श : प्रवासी साहित्य** —*सरोजिनी नौटियाल* 23
शिक्षा — **बालिका शिक्षा से दीप्त हो रही दुनिया**—*रमेश कुमार सिंह* 28
शब्द ज्ञान — **आओ, भारतीय भाषाएँ सीखें** 32
चित्रकथा — **कार्टून और चित्रकथाएँ बच्चों की कल्पना को उड़ान देते हैं**—*राज कमल* 34
स्मरण — **आधुनिक भारत के जनक : राजा राममोहन राय** —*संजय गोस्वामी* 37
धरोहर — **सांस्कृतिक-ऐतिहासिक धरोहर ओरछा**—*डॉ. यशोधरा भटनागर* 41
पर्यावरण — **राजसमंद का अनूठा गाँव पिपलांत्री**—*सुनील कुमार महला* 44
संस्कृति — **बिहू-असम का प्राणोत्सव**—*सबिता दास सवि* 46
पुस्तक समीक्षा 49
साहित्यिक गतिविधियाँ 60
पुस्तकें मिलीं 64

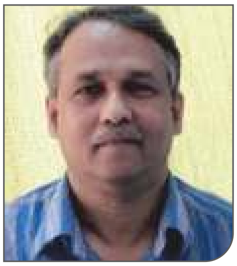

# ‘राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है’

*—महात्मा गांधी*

14 सितंबर, 1949 को भारत की नवनिर्मित संविधान सभा द्वारा देवनागरी लिपि में हिंदी को केंद्र सरकार की आधिकारिक भाषा बनाने का निर्णय लिया गया था। देश की अधिकांश आबादी द्वारा हिंदी का प्रयोग किए जाने के कारण स्वाभाविक ही यह देश की एक सर्वमान्य भाषा बन गई थी। राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की भाषा भी मुख्यतः हिंदी ही थी। ऐसे में सहज ही संविधान सभा द्वारा हिंदी को राष्ट्र की राजभाषा के रूप में अपनाने का विचार किया गया। इस निर्णय के महत्व को राष्ट्रव्यापी बनाने के उद्देश्य से वर्ष 1953 से, 14 सितंबर को प्रतिवर्ष हिंदी दिवस के रूप में मनाने का संकल्प किया गया। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने यदि यह कहा कि ‘राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है’ तो ऐसा अनायास ही नहीं कहा था। उन्हें पता था कि राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने में भाषा का क्या महत्व है और राष्ट्र को एक सूत्र में बाँधकर रखने की क्षमता एकमात्र हिंदी में ही थी, और ऐसा केवल गांधी ही नहीं, देश के अधिकांश राजनेता भी सोचते और मानते थे।

कहना न होगा कि हिंदी यदि राष्ट्र की सर्वमान्य भाषा बनी तो इसका कारण केवल यही रहा कि हिंदी को देश में अभिव्यक्ति की आम या जन भाषा के रूप में पूरे राष्ट्र द्वारा स्वीकार किया गया था। यह हमारे देश की सांस्कृतिक और भाषायी खूबसूरती का ही परिणाम है कि देश की क्षेत्रीय या प्रादेशिक भाषाएँ भी हिंदी के समान ही महत्वपूर्ण समझी गईं और अपने-अपने प्रांतों में वे मुख्य भाषा के रूप में समादृत हैं—‘न हिंदी से बढ़कर, न कमतर, बल्कि बराबर’। लगभग 400 भाषाओं और बोलियों के इस देश में भाषा सहोदर का ऐसा दृष्टांत विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है।

आज यदि हिंदी विश्व की प्रायः तीसरी सबसे बड़ी भाषा के रूप में स्थापित हुई है तो यह आस भी बँधती है कि यह अब शीघ्र ही संयुक्त राष्ट्र की मान्यता प्राप्त भाषाओं में सम्मिलित कर ली जाएगी। वैसे, हम भारतीयों के लिए गौरव की बात है कि हिंदी को संयुक्त राष्ट्र में गैर-आधिकारिक भाषाओं की सूची में सम्मिलित किया जा चुका है और संयुक्त राष्ट्र ने यू. एन. न्यूज की एक हिंदी वेबसाइट लॉन्च भी की है। हिंदी ‘यूनेस्को’ की कार्यकारी भाषाओं में पहले से ही सम्मिलित है।

अभी हाल ही में, 12 अगस्त, 2025 को देशभर में राष्ट्रीय पुस्तकालय दिवस मनाया गया। पुस्तकालय विज्ञान के जनक पद्मश्री सम्मान से सम्मानित डॉ. (प्रो.) एस. आर. रंगनाथन की स्मृति में यह दिवस मनाया जाता है। डॉ. रंगनाथन एक नवाचारी पुस्तकालयाध्यक्ष, गणितज्ञ और प्रोफेसर थे। इस दिवस को पुस्तकालयाध्यक्ष दिवस के रूप में भी जाना जाता है। हमें इस दिवस को पुस्तकालय के प्रति आम जन में रुचि और प्रवृत्ति के प्रोत्साहन के रूप में भी मनाना चाहिए। ऐसा करके हम देश में पुस्तक संस्कृति के विकास और प्रोन्नयन में अपना योगदान दे सकते हैं। हमारे माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी का यह कथन बेहद प्रासंगिक और समयोचित है—‘जब लोग पढ़ते हैं तो देश आगे बढ़ता है’। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत (एनबीटी, इंडिया) की स्थापना भी, वर्ष 1957 में 01 अगस्त को देश में पठन-रुचि, पठन-आदत, पठन-प्रवृत्ति और अंततः पुस्तक संस्कृति के विकास और प्रोन्नयन को दृष्टि में रखकर की गई थी।

प्रसंगवश, हमने राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की स्थापना की हाल ही में 69वीं जयंती मनाई है। देश में पुस्तक संस्कृति के विकास के लिए, 58 भाषाओं और बोलियों (जनजातियों सहित) में, पुस्तकों के प्रकाशन के साथ हम निरंतर कार्यरत और सक्रिय हैं और यही सन्नद्धता और वचनबद्धता हमें विशिष्ट बनाती है।

यह अनायास नहीं है कि एनबीटी को देश के नॉलेज पार्टनर के रूप में समझा गया है। एनबीटी के, देश का नॉलेज पार्टनर होने पर हमें खुशी ही नहीं, गर्व भी है।

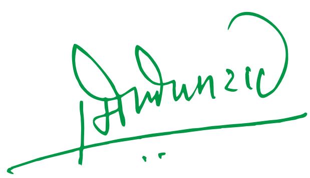

**(प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे)**
*प्रधान संपादक,* **पुस्तक संस्कृति**

# भारत को चाहिए भाषा-स्वराज

भाषा अस्तित्व, अस्मिता, स्वाभिमान और संस्कृति की द्योतक होती है। भारत भाषायी बहुलता वाला राष्ट्र है। इस महादेश को भावात्मक एकता और अखंडता के सूत्र में बाँधने का काम ऋषियों और अन्य मनीषियों ने अभिव्यक्ति के जिन माध्यमों से किया है, उनमें भाषा प्रमुख है। भारतीय ज्ञान परंपरा के जितने भी महान ग्रंथ रचे गए हैं, उनके मूल भाव को लगभग सभी भारतीय भाषाओं में ढाला गया है। जन-जन तक पहुँचाया गया है। 'रामायण' और 'गीता' इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं। सभी भाषाओं में इनके अनुवाद और भाष्य उपलब्ध हैं और समाज द्वारा

अपनाये गए हैं। अपभ्रंश हो या संस्कृत, अनेक भारतीय भाषाओं का उद्गम इनमें मिलता है। मराठी के प्रादुर्भाव का दृष्टांत विलक्षण है। 79 वर्ष पहले प्रकाशित 'विक्रम स्मृति-ग्रंथ' में भाषाविद् वि.भि. कोलते का शोध आलेख 'अवंति : मराठी का मायका' यह नया तथ्य प्रकट करता है। ऐसे तथ्य यह जतलाते हैं कि भारत में भाषायी बहुलता का मूल एकात्मकता है। भारतीय भाषाओं में अपनापा और बहनापा है। इनमें न तो किसी तरह की प्रतिद्वंद्विता है और न ही प्रतिस्पर्धा। स्थानीयता के प्रभाव से भिन्नता अवश्य दृष्टिगोचर होती है, परंतु वह दुराव का कारण नहीं बनती। मातृभाषाओं का महत्व प्रकारांतर से राष्ट्रीयता को सुदृढ़ आधार ही प्रदान करता है।

भारत की स्वाधीनता को संपूर्णता प्रदान करने के लिए भारत में भाषा-स्वराज अपरिहार्य है। भारतीय मातृभाषा अनुष्ठान, समय की माँग है। इसका मूल मंत्र है—'संकल्प का विकल्प नहीं होता।' सर्वप्रथम मातृभाषाओं का सर्वोच्च सम्मान हो, और लोक व्यवहार में मातृभाषाओं को गरिमापूर्ण स्थान मिले। राष्ट्रीय राजभाषा के रूप में हिंदी निर्विवाद रहे और हिंदीतर भारतीय भाषाओं वाले राज्यों में उनकी अपनी भाषा प्रांतीय राजभाषा हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में शिक्षा में भाषा विषयक प्रावधान बहुत स्पष्ट हैं। इसमें मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा तथा समुन्नत प्रादेशिक भाषाओं और हिंदी में उच्चतर शिक्षा की व्यवस्था है। यह सभी भारतीय भाषाओं को महत्व और सम्मान देती है। राजनीतिक दुष्चक्र में भाषा का सवाल जिस तरह उलझ गया है, उसमें समाधान का मार्ग राष्ट्रीय संकल्प से ही निकल सकता है। भारतीय भाषाओं के बीच परस्पर सम्मान और सौहार्द्र से यह गुत्थी सुलझ सकती है। 'स्किल' के रूप में अंग्रेजी और अन्य प्रमुख विश्व भाषाओं के पठन-पाठन से कोई असहमति नहीं है, परंतु राजभाषा के रूप में अंग्रेजी कतई स्वीकार्य नहीं हो सकती।

**विजयदत्त श्रीधर**

**जन्म :** 10 अक्तूबर, 1948, बोहानी, मध्यप्रदेश

**प्रकाशन :** भारतीय पत्रकारिता कोश, पहला संपादकीय, मध्यप्रदेश में पत्रकारिता : उद्भव और विकास, चौथा पड़ाव

**सम्मान :** पद्मश्री अलंकरण (2012), भारतेंदु हरिश्चंद्र पुरस्कार (2011), महर्षि वेदव्यास राष्ट्रीय सम्मान (2012-2013)

**संप्रति :** पत्रकारिता इतिहास के अध्येता, सितंबर 1981 से पत्रकारिता, जनसंचार और विज्ञान संचार की शोध पत्रिका 'आंचलिक पत्रकार' का संपादन, माधवराव सप्रे समाचार पत्र संग्रहालय एवं शोध संस्थान, भोपाल के संस्थापक के रूप में प्रसिद्धि

**संपर्क :** मोबाइल— 7999460151

ई-मेल— sapresangrahalaya@yahoo.com

अपनी राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा होता है। विदेशी राजभाषा का होना गुलामी का कारक होता है। शिक्षा के माध्यम, प्रशासनिक काम-काज, संसदीय कार्य व्यवहार और न्यायालयों की भाषा के रूप में हिंदी और भारतीय भाषाओं का प्रयोग भारत की स्वतंत्रता को संपूर्ण बनाएगा।

**शिक्षा का उद्देश्य और लक्ष्य ज्ञानार्जन होता है। शिक्षा मनुष्य को अच्छा मनुष्य, नागरिक को विवेकसंपन्न उत्तरदायी नागरिक और सुसभ्य एवं सुसंस्कृत मानव बनाने का आधार रचती है। यह भाषा नीति व्यावहारिक और राष्ट्रीय हितों की पोषक हो सकती है।**

### भारतीय मातृभाषा अनुष्ठान के सूत्रों का प्रकार निम्न रूप में हो सकता है–

1. भाषा राष्ट्र की अस्मिता, संस्कृति की संवाहक और समाज का स्वाभिमान होती है। वस्तुतः, भाषा समाज की सामूहिक थाती होती है। अतः समाज का ही दायित्व है कि वह अपनी भाषा के गौरव पर आँच न आने दे।
2. हर भारतीय अपनी भाषा पर अभिमान रखे। अन्य भारतीय भाषाओं का सम्मान करे।
3. राजभाषा का प्रावधान निम्नलिखित बिंदुओं के अनुसार हो सकता है–
   - 3.1 भारत की राजभाषा संविधान में मूल रूप से किये गए प्रावधान के अनुसार हिंदी हो।
   - 3.2 अंग्रेजी का राजभाषा के रूप में स्थान न हो।
   - 3.3 सभी हिंदी प्रदेशों की राजभाषा हिंदी हो।
   - 3.4 आठवीं अनुसूची में सम्मिलित अन्य समुन्नत भारतीय भाषाएँ अपने-अपने प्रदेशों की राजभाषा हों। ऐसे राज्यों में द्वितीय भाषा के रूप में हिंदी का प्रावधान हो।
   - 3.5 भारत सरकार के राजभाषा विभाग में सभी भारतीय भाषाओं के अनुवाद की दक्ष व्यवस्था हो। हिंदीतर प्रदेशों से उनकी राजभाषा (मातृभाषा) में आने वाले पत्रों और सभी पत्रकों, प्रस्तावों, प्रतिवेदनों आदि के त्वरित और प्रामाणिक अनुवाद की प्रभावी प्रणाली विकसित की जाए। भारतीय भाषाओं के बीच संपर्क और संवाद के लिए यही माध्यम रहे।
   - 3.6 सभी राज्यों में राजभाषा विभाग की स्थापना हो। उनमें हिंदी और प्रमुख हिंदीतर भारतीय भाषाओं के त्वरित और प्रामाणिक अनुवाद की दक्ष प्रणाली विकसित की जाए।
   - 3.7 अनुवाद की भाषा बनावटी न हो। सहज सामान्य भाषा का प्रयोग किया जाए।
   - 3.8 बिंदु क्रमांक 3.5 और 3.6 के क्रियान्वयन के लिए वित्तीय संसाधन का व्यवधान नहीं आए, इसके लिए यथा आवश्यकता बजट प्रावधान किये जाएँ।
   - 3.9 प्रतिवर्ष 14 सितंबर को राजभाषा दिवस मनाया जाए।
4. नागरिक दैनंदिन जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में अपनी मातृभाषा का प्रयोग करें। शुद्ध वर्तनी और सही उच्चारण पर ध्यान दें। अपनी भाषा के अंकों को व्यवहार में लाएँ।
5. जिनकी मातृभाषा कोई जनपदीय लोकभाषा हो, वे घर-परिवार और विवाह आदि सामाजिक कार्यों में उसी का प्रयोग करें।
6. भारतीय भाषाओं के बीच शब्दों का आदान-प्रदान बढ़ाएँ। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाएँ परस्पर शब्दों की ग्राह्यता बढ़ाएँ। सबसे पहले ऐसे शब्द संकलित किये जाएँ, जो समान रूप से भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त हो रहे हैं।
7. भाषाओं में शब्दों की आवाजाही सामान्य प्रक्रिया है। हिंदी में सैकड़ों ऐसे शब्द प्रचलित हैं, जो अन्य भारतीय भाषाओं और विदेशी भाषाओं से आए हैं। वे हिंदी भाषा में रच-बस गए हैं। अन्य भाषाओं में भी ऐसा हुआ है।
8. हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं के बीच श्रेष्ठ साहित्य का आदान-प्रदान बढ़े। अनुवाद के माध्यम से सभी भारतीय भाषाओं की उत्तम पुस्तकों का रसास्वादन हिंदी पाठकों को सुलभ हुआ है। प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य को विशाल हिंदी पाठक समाज मिला है। अखिल भारतीय पहचान मिली है।

9. शिक्षा का उद्देश्य और लक्ष्य ज्ञानार्जन होता है। शिक्षा मनुष्य को अच्छा मनुष्य, नागरिक को विवेकसंपन्न उत्तरदायी नागरिक और सुसभ्य एवं सुसंस्कृत मानव बनाने का आधार रचती है। यह भाषा नीति व्यावहारिक और राष्ट्रीय हितों की पोषक हो सकती है।
   - 9.1 प्राथमिक शिक्षा का माध्यम केवल मातृभाषा हो।
   - 9.2 माध्यमिक विद्यालयों से विश्वविद्यालयों तक राष्ट्रभाषा हिंदी का पठन-पाठन पूरे देश में हो।

9.3 जिन प्रदेशों की अपनी समुन्नत भाषाएँ हैं, वहाँ वही भाषाएँ शिक्षण का माध्यम हों। त्रिभाषा सिद्धांत के अनुरूप दूसरी भाषा के रूप में हिंदी पढ़ाई जाए।

9.4 हिंदी क्षेत्रों में विशेष भाषा के रूप में विश्वविद्यालयों में किसी-न-किसी हिंदीतर भारतीय भाषा का पठन-पाठन आवश्यक हो। प्रदेश शासन के अधीन आने वाले विश्वविद्यालय विशेष भाषा के रूप में किसी एक या अधिक भारतीय भाषा को चुनें। यथा—तमिल, तेलुगु, मलयालम, कन्नड़, बाँग्ला, ओड़िया, मराठी, गुजराती, पंजाबी और असमिया आदि। इस तरह हिंदी क्षेत्रों में अन्य भारतीय भाषाओं को सम्मान दिया जाएगा, अपनाया जाएगा, तब उन भाषा क्षेत्रों में हिंदी के प्रति रुझान बढ़ेगा।

9.5 हिंदी प्रदेशों के अंतर्गत आने वाली लोकभाषाएँ, यथा, भोजपुरी, अवधी, ब्रज, बुंदेली, बघेली, मालवी, निमाड़ी, राजस्थानी, कुमाउँनी, गढ़वाली, हिमाचली, कौरवी और मध्यदेशी आदि; संबंधित लोकभाषा के क्षेत्र में आने वाले विश्वविद्यालयों में हिंदी के एक विशेष प्रश्नपत्र के रूप में उनका अध्ययन आवश्यक हो। उनमें शोध का प्रावधान भी रहे।

9.6 ज्ञान-विज्ञान के वैश्विक संपर्क के लिए अंग्रेजी भाषा का अध्ययन कराया जाता है। इसके साथ-साथ फ्रेंच, जर्मन, जापानी, रूसी, मंदारिन, अरबी आदि भाषाओं के शिक्षण की व्यवस्था रहे। परंतु विदेशी भाषाओं को केवल 'स्किल' के रूप में अपनाया जाए।

10. हिंदी और भारतीय भाषाओं को रोजगारपरक स्वरूप दिया जाए। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की भाषा के रूप में ढाला जाए।

11. जिस तरह कंप्यूटर में अंग्रेजी के 'स्पेल चेक' की व्यवस्था है, उसी तरह हिंदी और भारतीय भाषाओं के लिए भी सही शब्द/वर्तनी की जाँच की प्रणाली सूचना प्रौद्योगिकी में विकसित की जाए।

12. सभी प्रदेशों में व्यापारिक और अन्य प्रतिष्ठानों पर लगाए जाने वाले नामपट पर सबसे ऊपर और प्रमुखता से उसी प्रदेश की राजभाषा में नाम अंकित किया जाना चाहिए। ओड़िशा राज्य में ओड़िया के प्रयोग के लिए दंडात्मक अधिनियम लागू किया गया है। इसके उल्लंघन पर जुर्माना और सजा का प्रावधान है।

## भारत की ग्यारह शास्त्रीय भाषाएँ

भारत सरकार का संस्कृति मंत्रालय ऐसी भाषाओं को शास्त्रीय भाषा की मान्यता देता है, जो—

1. 1500-2000 वर्ष या उससे अधिक प्राचीन लेख अथवा इतिहास उस भाषा में उपलब्ध होना चाहिए।
2. भाषा को पढ़ने-लिखने-बोलने वाले लोग उस भाषा के प्राचीन साहित्य और प्रलेखन को अमूल्य साहित्यिक धरोहर मानते हों।
3. उस भाषा की साहित्यिक परंपरा अनूठी और मौलिक होनी चाहिए।

तदनुसार, संस्कृति मंत्रालय ने इन ग्यारह भारतीय भाषाओं को शास्त्रीय भाषा की मान्यता प्रदान की है—तमिल (2004), संस्कृत (2005), कन्नड़ (2008), तेलुगु (2008), मलयालम (2013), ओड़िया (2014), बाँग्ला (2024), असमिया (2024), मराठी (2024), पालि (2024) और प्राकृत (2024)।

## मातृभाषा-साहित्य से लगाव का अनन्य उदाहरण

यह घटना 14 जुलाई, 2024 की है। पद्मश्री से सम्मानित मराठी के लोकप्रिय कवि नारायण सुर्वे के रायगढ़, जहाँ अब उनकी बेटी रहती

हैं, स्थित घर में चोरी हुई। चोर उनके घर से कीमती सामान चुरा ले गया। घर पर कोई नहीं था, तब वह चोर दूसरे दिन भी चोरी करने पहुँचा। सामान की उठा-धरी में उसकी दृष्टि दीवार पर लगे सुर्वे जी के पद्मश्री प्रशस्ति पत्र तथा सम्मानों और पुरस्कारों पर पड़ी। उसे ग्लानि हुई। उसने चोरी किया हुआ सारा सामान वापस घर में रखा। क्षमायाचना का पत्र भी लिखा—यदि पता होता कि कवि का घर है, तो कभी चोरी नहीं करता। काश! सभी मातृभाषाओं में अनुराग की यही भावना पनपे (मुद्दा चोर और चोरी का नहीं, भाषा से अपनत्व और जुड़ाव का है।)। क्या हिंदी और अन्य भाषायी समाज में अपनी भाषा-साहित्य के प्रति ऐसे अनुराग की कल्पना की जा सकती है?

# नदी-संस्कृति और मानव-जीवन
# नदियाँ मानव की सखियाँ हों

गहन रहस्यमय स्रोत से निकली जलधारा का नाम नदी है। सरस, सजल और सतत प्रवाह का नाम नदी है। कलकल बहती कल की आस बँधाती किसी चमत्कार से जीवन को भर देने वाली सत्ता को नदी ही तो कहते हैं! जल के विविध प्राकृतिक स्रोतों में से जो जीवंतता की अथक यात्रा की प्रतीक है, उसे नदी कहते हैं। लक्ष्य तक पहुँचने के अपने आवेग को रोक न सके और हर बाधा पर विजय प्राप्त कर आगे बढ़ने का संदेश दे वही तो नदी है! नदी मानव के श्रेयस्कर स्वभाव से मेल खाती है, इसलिए हमारी संस्कृति का शृंगार बन जाती है। नदी की अपनी संस्कृति होती है और नदियाँ संस्कृतियों की न केवल नींव रखती हैं, प्रत्युत उन्हें पोषित भी करती हैं। नदियाँ संस्कारों की जननी भी हैं, संवाहक भी; संवर्द्धक भी हैं और संरक्षक भी,

इसलिए कहा जाता है कि सभी सभ्यताएँ किसी-न-किसी नदी-तीर पर विकसित हुई हैं। नदियाँ मनुष्य की सखियाँ हैं। मूक सहचरी, जो बिना बोले आपको शीतलता, पवित्रता, गति और संजीवनी देती ही रहती हैं। ये मौन सदानीरा अपनी हर लहर में प्रभु के संदेशों को कलकल निनादित करती बढ़ती जाती हैं। नदियों से संस्कृति है, नदियों से सभ्यता, नदियों से अर्थवत्ता है तो नदियों से वानस्पतिकता! नदियों ने बहुत सिखाया है। श्रीकृष्ण के लिए महाकवि जयदेव कह गए हैं, 'धीरे समीरे यमुना तीरे वसति वने वनमाली'—कृष्ण रस यमुनातीर की रेणु का रस है। श्रीराम सरयू में जल समाधि लेते हैं और कवि भारतभूषण कहते हैं—

'कमलों से लिपट गई सरयू... ऊपर जल था नीचे जल था... वक्षस्थल तक जल ही जल था... काँपी सरयू... सरयू काँपी...!

यह नदियाँ गंगा, यमुना, सरयू, नर्मदा, क्षिप्रा, बेतवा हो या चिनाब—सैकड़ों नदियाँ क्षेत्र, प्रांत से होते हुए पूरे देश में धमनियों-सी व्याप्त हैं। समस्त नदियाँ उसी जल तत्व की प्रतीक हैं। जल तत्त्व का पंच महाभूतों में विशिष्ट स्थान है। जल के सतत प्रवाही स्रोत होने के कारण नदी का मानव-जीवन के प्रवाह, संरक्षण और संवर्द्धन में महत्वपूर्ण स्थान है। नदियों ने मानव-सभ्यता और संस्कृति, दोनों को सार्थक और अलंकृत किया है। नदियाँ हमारी मौन सहचरी होते हुए भी मानव-सभ्यता की मुखर स्रोत और आधार रही हैं। मानवीय सभ्यता के विकास-क्रम में संस्कृति की धमनियों-सी बहती नदियाँ हमारी प्राणदायिनी शक्ति रही हैं। नदियाँ सृष्टिकर्ता का विशिष्ट उपहार हैं। वरुण देवता की ये बेटियाँ पर्वतों से सागर तक की अपनी निरंतर और अथक परमार्थिक यात्रा में सहज सेतु का कार्य करती हैं।

दार्शनिक रूप से देखें तो नदी हमें 'चरैवेति-चरैवेति' का अमोघ मंत्र देती हैं। सांस्कृतिक रूप से नदियाँ अपने किनारे बसे

**डॉ. राजरानी शर्मा**

- मध्य प्रदेश में 36 वर्षों तक प्राध्यापिकीय सेवा देने के बाद लेखन कार्य में सक्रिय।
- प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविता, समीक्षा एवं ललित निबंधों का प्रकाशन।
- आकाशवाणी व दूरदर्शन से साक्षात्कार एवं वार्ताएँ प्रसारित।
- अनेक साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक संस्थाओं में सक्रिय भागीदारी।
- दो काव्य-संग्रह प्रकाशित।

**संपर्क :** ई-मेल— rajranis@gmail.com

मानव-जीवन को सरस, समृद्ध, सक्षम और सक्रिय बनाती हैं। जीवनदायिनी ये नदियाँ मानव-जीवन को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करती हुई, कृषि समृद्धि से जोड़ती हैं। भौगोलिक रूप से पर्वतों की ये पुत्रियाँ केवल प्राकृतिक संसाधन ही नहीं हैं, अपितु प्राणवत्ता की नयी परिभाषा गढ़ती हुई सभ्यता और संस्कृति, दोनों को ही अपनी विशिष्ट पहचान देती हैं। नदियों के किनारे बसे नगर-गाँव-बस्तियाँ, वृक्ष, वनस्पति, कृषि के साथ संस्कार, आस्था, स्नान-दान और आचमन की पवित्र परंपराएँ जीवन को अमृत गति प्रदान करती हैं। उदास मन नदी किनारे का मौन ढूँढ़ता है, तो उल्लसित मन भी लहर-लहर में खो जाना चाहता है। यमुना की लहरों में अर्ध मुरझाए कमल को देखकर कृष्ण को राधा की सुधियाँ घेर लेती हैं और स्मृतियों की विरह नदी में बहते-बहते कृष्ण उद्धव को ब्रज भेजते हैं। गति का हमारे चैतन्य पर अजब-सा असर होता है। यूँ ही नहीं कहा जाता कि धरा पर दो-तिहाई भाग जल-ही-जल है और हमारे देह में सत्तर प्रतिशत जल है। बिना जल के कल कहाँ... जीवन की कलकल कहाँ...!

समय साक्षी है कि विश्व में अनेक सभ्यताएँ नदी किनारे विकसित हुई और सभ्यताओं ने अपनी विशिष्ट पहचान उस नदी की विशिष्ट संज्ञा के साथ बनाई। उनमें प्रमुख हैं—

**प्रमुख नदी-आधारित प्राचीन सभ्यताएँ**

| क्र. सं. | सभ्यता का नाम | नदी का नाम (लगभग) | स्थान (आधुनिक देश) | समय | कालखंड |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | मेसोपोटामिया | टाइग्रिस व यूफ्रेटीस | इराक | 3500 ई.पू.— 500 ई.पू. | प्राचीन |
| 2. | मिस्र | नील नदी | मिस्र | 3100 ई.पू.— 332 ई.पू. | प्राचीन |
| 3. | सिंधु घाटी | सिंधु व सहायक नदियाँ | भारत, पाकिस्तान | 2600 ई.पू.— 1900 ई.पू. | प्राचीन |
| 4. | चीनी | ह्वांग हो (पीली नदी) | चीन | 2100 ई.पू.— अब तक | प्राचीन से आधुनिक |
| 5. | माया | उसुमासिंता व ग्रिजाल्वा | मेक्सिको, ग्वाटेमाला | 2000 ई.पू.— 1500 ई.पू. | प्राचीन |
| 6. | अंडियन (इंका) | अमेजन व अन्य नदियाँ | पेरू, इक्वाडोर आदि | 1200 ई.— 1533 ई. | मध्यकालीन |

उक्त सभी सभ्यताएँ नदियों के किनारे विकसित होकर विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान बना पाईं। अमेजन, नील और ह्वांग हो जैसी नदियों ने विश्व इतिहास को बनाने में महती भूमिका निभाई। नदियों का सांस्कृतिक महत्व व्यापारिक महत्व से अधिक है। नदियाँ कथा-कहानी, काव्य-महाकाव्य और लोककथा जैसी साहित्यिक विधाओं के साथ कलात्मक अभिव्यक्ति, जैसे—चित्रकला और संगीत में जीवित रहती है। सिंधु नदी सभ्यता के सहारे आर्यावर्त (भारत) ने अपनी आजीविका के साथ धार्मिक अनुष्ठानों, समारोहों व नदी-परिवहन के माध्यम से व्यापार से जीवन सँवारा।

भारतीय नदियों में मुख्य रूप से भौगोलिक आधार पर देखा जाए तो कहा जा सकता है कि दो प्रकार की हैं—1. हिमालयी नदियाँ 2. प्रायद्वीपीय नदियाँ।

हिमालयी नदियों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. पूर्वी हिमालयी नदियाँ—सिंधु, सतलुज , ब्रह्मपुत्र
2. निम्न हिमालयी नदियाँ—व्यास , रावी, चिनाब
3. शिवालिक नदियाँ—हिंडन, सोलानी
4. महान हिमालयी नदियाँ—गंगा, यमुना, घाघरा, तीस्ता, गंडक, यमुना, अलकनंदा और भागीरथी आदि

प्रायद्वीपीय नदियाँ प्रायः मौसमी होती हैं। जल के अनुसार नदी दो प्रकार की होती हैं—1. सदानीरा, जैसे—गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र, कावेरी आदि। 2. मौसमी, जैसे—घाघरा

## नदियों का सांस्कृतिक महत्व

भारत में नदी को पूजनीय स्थान दिया जाता है। जीवन के आनुष्ठानिक और मांगलिक कार्यों में गंगा, यमुना, कावेरी, नर्मदा आदि नदियों की पूजा की जाती है। वैदिक काल में सिंधु और सरस्वती के किनारे ही आर्य बसते थे। सरस्वती के तटवर्ती क्षेत्रों में ही वेद और आर्ष ग्रंथों की रचना हुई। सरस्वती वेदों की मुख्य नदी है और अलकनंदा सहायक है। ये दोनों ही आगे जाकर गंगा कहलाईं। ऋग्वेद के नदी सूक्त में गंगा और यमुना का उल्लेख मिलता है। आर्ष ग्रंथों में गंगावतरण की कथा, सूक्त, स्तुति, स्तोत्र और अष्टक की रचना की गई है। ऋग्वेद में इन्हें मातृदेवी कहा गया है। मनुष्यों, वनस्पतियों, पशु-पक्षियों और कृषि को सतत पोषित करने के कारण गंगा को माँ कहा गया है। भारतीय जीवन में गंगा स्नान, यमुना पान और नर्मदा दर्शन को विशेष माना गया है। नदी का प्रवाह हमारी चेतना को सात्विक बनाए रखने में और ऊर्जा प्रदान करने में सहायक है, इसलिए हमारे पुराने ऋषि-मुनि नदियों के किनारे तपस्या करते और मानव कल्याणार्थ विशिष्ट ग्रंथों का प्रणयन करते रहे हैं। भारतीय साहित्य में गंगा, यमुना का विशेष स्थान है। गंगावतरण की कथा शिव की जटाओं की शक्ति की कथा है, भागीरथ के संकल्प की कथा है। राम-कथा में गंगावतरण की कथा विश्वामित्र जी राम को सुनाते हैं। केवट द्वारा राम को गंगा पार कराने की कथा प्रसिद्ध और लोकप्रिय है। पंडित राज जगन्नाथ का 521 संस्कृत छंदों में रचा 'गंगा स्तवन' प्रसिद्ध है। हिंदी के रीतिकालीन कवि पद्माकर ने 'गंगालहरी' में लिखा है, 'विधि के कमंडल की सिद्धि है प्रसिद्ध यही, हरि पद पंकज प्रताप की लहर है!'

इसी प्रकार, कृष्ण-काव्य में यमुना को विशिष्ट स्थान प्राप्त है और तीन को अर्थात श्याम सुंदर, यमुना और वल्लभाचार्य को पुष्टि संप्रदाय में इष्ट माना गया है। वल्लभाचार्य द्वारा रचित 'यमुनाष्टकम्' में कहा गया है कि इसके पाठ से स्वभाव को सुंदर बनाया जा सकता है। भारतीय नदियाँ हमारा आध्यात्मिक पक्ष सुदृढ़ करके हमें हमारी परंपरा और राम, कृष्ण और शिव की भक्ति, शक्ति और गौरव गाथाओं से जोड़ती हैं। संस्कृति को इतना प्रभावित करती हैं नदियाँ कि सिंधु किनारे विकसित सभ्यता का नाम ही 'सिंधु सभ्यता' हो गया। नदियों के मार्ग में दिशा परिवर्तन होने से भी मानव-सभ्यता पर गहरा असर पड़ता है। घाघरा, हकरा की समरूपा नदी सरस्वती सतलुज और यमुना में मिल गई और तीनों ने मिलकर हड़प्पा संस्कृति का विकास किया।

भारतीय नदियों के किनारे धार्मिक पर्वों पर मेले लगते हैं, जो सामाजिक समरसता और सौहार्द का प्रतीक है। कुंभ और महाकुंभ जैसे विराट पर्व और अनुष्ठान महीने भर से अधिक चलते हैं। इसी वर्ष 67 करोड़ भारतीय और विश्व नागरिकों ने गंगा स्नान करके यह सिद्ध किया कि गंगा हमारी परंपरा के आर्ष सूत्रों से हमें जोड़ती है। प्रयागराज में प्रतिवर्ष लगने वाला कल्पवास विश्व का पवित्रतम अनुष्ठान है। पूर्णिमा स्नान, छठ पूजा, गंगा दशहरा पर हर वर्ष लाखों श्रद्धालु गंगा स्नान कर अपनी सनातन परंपरा के अनुसार माँ गंगा में आस्था की डुबकी लगाते हैं। चेतना की पवित्रता और जीवन में पुनर्नवा होने के लिए गंगा स्नान की मान्यता जन-जीवन में है। ये भारतीय संस्कृति का गौरवशाली पक्ष है कि हम नदी को स्थूल पंच भौतिक तत्वों में से एक तत्व मानते हुए उसे सूक्ष्म चेतना से जोड़कर पुण्यदायिनी माँ गंगा का स्थान अपने हृदय में देते हैं। यमुना को श्रीकृष्ण की पटरानी स्वरूप में पूजते हैं और नर्मदा की पंचकोशी परिक्रमा पावन अनुष्ठान और मनोरथ की तरह करते हैं। 'नर्मदे हर' कहते हुए अमृलाल बेगड ने लिखा कि गंगा श्रेष्ठ है, पर नर्मदा ज्येष्ठ है। हमारे यहाँ नदियों से नायक-नायिका की कहानी जुड़ी है, चाहे राधा-कृष्ण हो या सोहनी-महिवाल।

नदियों ने राजनैतिक और सांस्कृतिक सीमाओं को जोड़ने का कार्य भी किया है। नदी तीर की संस्कृति ही विशिष्ट है, चाहे काशी हो, प्रयाग हो या मथुरा, हरिद्वार हो या नर्मदा तट पर बसे अनेक नगर हों, सबकी संस्कृति प्रातः स्नान से संध्या आरती के भव्य अनुष्ठान तक काशी से लेकर हरिद्वार तक अनोखा चामत्कारिक आकर्षण पैदा करती हैं। नदियों के किनारे जीवन अमृत है, इसलिए सदियों से नदी किनारों पर ही बस्तियाँ बसाई जाती रहीं। नदियाँ प्राचीन काल से अब तक परिवहन मार्ग के साथ व्यापार का विशेष साधन रही हैं। प्राचीन काल में जब सड़क बनाना कठिन था तब नदियों से व्यापार-वाणिज्य किया जाता था। विकास के साथ कदम मिलाते हुए भारत सरकार ने 13 जनवरी, 2023 को दुनिया की सबसे लंबी क्रूज यात्रा का शुभारंभ किया, जो वाराणसी से असम के डिब्रूगढ़ तक बाँग्लादेश के माध्यम से यात्रा करेगा। यह पचास दिनों में गंगा, भागीरथी, हुगली, ब्रह्मपुत्र और वेस्ट कोस्ट नहर सहित 27 नदियों के माध्यम से 4,000 किलोमीटर की दूरी तय करेगा। इसे 'गंगा विलास क्रूज' नाम दिया गया है।

नदियाँ सांस्कृतिक वैभव के साथ आर्थिक समृद्धि और व्यावसायिक आत्मविश्वास प्रदान कर मानव-प्रगति में अपना स्थान और महत्व सुनिश्चित करती हैं। आज के बदलते समय में नदियाँ साहसिक पर्यटन के लिए भी युवाओं में लोकप्रिय हैं। गंगा में राफ्टिंग कराई जाती है। नदियों पर विशाल बाँध बनाकर विद्युत उत्पादन और कृषि में क्रांति की गई है। जवाहरलाल नेहरू ने भाखड़ा नांगल बाँध के उद्घाटन के समय कहा था, "ये आधुनिक समय के तीर्थ हैं।" आज अंतरराष्ट्रीय राजनीति और कूटनीति में नदियों का जल भारत का सहायक हो रहा है। अभी हाल ही में 'सिंधु जल समझौता' निरस्त कर हमारे देश ने अपने दुश्मन के दाँत खट्टे कर दिए।

निष्कर्ष यह कि नदियाँ वैदिक से लेकर पौराणिक काल और आधुनिक काल तक अपनी बूँद-बूँद 'सुरसरि सम सब कहँ हित होई' के अनुसार मानव-कल्याण के लिए न्योछावर कर देती हैं। हमारी संस्कृति और सभ्यता के साथ हमारी अस्मिता की संरक्षिका नदियाँ हमें अतुलनीय आध्यात्मिक शक्ति देती हैं। सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से सहयोगी नदियों के बिना मानव-जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। भारतीय जीवन की पूर्णता का पर्याय हैं नदियाँ और हमारी भावनाओं का शृंगार हैं। हमारे अधिकांश तीर्थ नदी-तीर पर स्थित हैं, क्योंकि हमारी परंपरा और अध्यात्म जल तत्व को प्रधानता देता रहा है। नदी पवित्रता के साथ ऊर्जा, स्फूर्ति, प्रवाही चेतना और उत्साह की स्रोत हैं। सांस्कृतिक समृद्धि देकर सभ्यता को सार्थक करती हैं और हमें प्रेयस के साथ श्रेयस से, लोक के साथ परलोक से जोड़ना सिखाती हैं नदियाँ।

लोक में आलोक बिखेरती ये नदियाँ हमारी शक्ति हैं। बाढ़ में रौद्र रूप धारण करने वाली नदियाँ हमारे अज्ञान को, असावधानी को, लालच को और अदूरदर्शिता को लानत देती हैं। वही नदियाँ हमारी फसलों को अमृत प्रदान कर हमें संजीवनी भी देती हैं। नदी भारतीय जीवन का मुहावरा हैं, लोकोक्ति हैं, स्तोत्र हैं, स्तवन हैं, समृद्धि का कोष हैं, भाषा की जननी हैं और हमारे शोक को श्लोक बना देने वाली माँ हैं। तमसा के किनारे ही आदिकवि का शोक, श्लोक में रूपांतरित हुआ। हम भी प्रार्थना करते हैं कि यह चिरंतन चैतन्य प्रवाह हमारी चेतना को सतत उत्कर्ष प्रदान करता रहे। हमारी प्रार्थनाओं में नदियाँ रहें, स्वच्छ, पावन स्तुतियों-सी नदियाँ हमारी रक्षा करती रहें और हम उनकी चिंता करते रहें। हमारे कंठ में यही स्तवन हो—

गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्मदे सिंधु कावेरी जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरु॥

# भारत की पैराग्लाइडिंग राजधानी बीड़ बिलिंग

अगर आपको प्रकृति के साथ रिश्ता जोड़ना हो, तो चले आइए बीड़ बिलिंग। बीड़ बिलिंग दो अलग-अलग शब्द हैं और इनकी सत्ता भी अलग-अलग ही है। 'बीड़' यानी बीड़ घाटी और 'बिलिंग' यानी पर्वत का एक नाम। सुविधा के लिए हम इसे बीड़ बिलिंग कह देते हैं, क्योंकि दोनों का अस्तित्व एक-दूसरे पर निर्भर है।

दिल्ली की झुलसती गरमी से कुछ दिनों के लिए राहत पाने के लिए इस बार हमने बीड़ बिलिंग जाने का कार्यक्रम बनाया। हिमाचल प्रदेश का एक सुरम्य प्रदेश है बीड़ बिलिंग। सड़क के रास्ते दिल्ली से बीड़ बिलिंग का रास्ता लगभग दस से बारह घंटों में तय होता है। हमारे सारथी थे—विक्रम। रास्ता लंबा था और लगभग दो सौ किलोमीटर रास्ता पहाड़ी है तो हमने रूपनगर में ब्रेक लिया। लगभग छह घंटों में हम दिल्ली से रूपनगर पहुँचे और अपने पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के अनुसार सराय भारतगढ़ में पहले से ही आरक्षित करवाया गया एक कमरा ले लिया। यह एक बहुत बड़ा रिज़ॉर्ट है।

अगली सुबह नाश्ता करने के बाद हमलोग मंडी और जोगिंदर नगर के रास्ते बीड़ जाने के लिए निकल पड़े। विकसित होते रास्तों की मुश्किलें झेलते हुए लगभग छह घंटों की यात्रा के बाद हम बीड़ पहुँचे। वहाँ हमारे नाती मृगांक ने हमारे लिए पहाड़ों और हरियाली से घिरे बीड़ में एक बड़ा-सा कमरा सुरक्षित करवा दिया था। उसने हमसे कहा कि यह बी एन बी है यानी ब्रेड और ब्रेकफास्ट। सारा काम स्वयं करो और मस्त रहो।

वस्तुतः, यह कहानी मृगांक के दिल्ली छोड़ने और बीड़ जाकर काम करने के निर्णय के साथ ही शुरू होती है। वह अट्ठाईस साल का नौजवान दिल्ली की


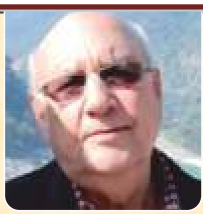

**प्रताप सहगल**

- सुपरिचित कवि, नाटककार, कथाकार, उपन्यासकार और आलोचक प्रताप सहगल की डायरी लेखन, यात्रा-वृत्तांत तथा आलोचना आदि विधाओं पर समान पकड़ रही है; अनुवाद और संपादन कर्म से जुड़े रहे हैं।
- जाकिर हुसैन कॉलेज में प्रोफेसर रहे सहगल साहब ने बाल साहित्य में भी प्रभूत और उल्लेखनीय योगदान दिया है। लेखक की 50 से अधिक कृतियाँ प्रकाशित। तीन मूल तथा एक अनूदित कृति न्यास से प्रकाशित है। अनेक रचनाओं के देश-विदेश की भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित। रचनाएँ पाठ्यक्रम में शामिल।
- हिंदी अकादमी के साहित्यकार सम्मान, संगीत नाटक अकादमी आदि सम्मानों से विभूषित। वर्तमान में स्वतंत्र लेखन में संलग्न।

मारामारी और प्रदूषण से निजात पाने के लिए ही बीड़ चला गया। यह जगह उसे इतनी पसंद आई कि वह वहीं का होकर रह गया। लेकिन छूटा हुआ घर और परिवार उसकी स्मृति में खलबली कर रहे थे। वह खुश होने के बावजूद बहुत बार अपने को अकेला महसूस करने लगा था। परिवार ने निर्णय लिया कि इस बार हम सब लोग कुछ दिनों के लिए उसके पास चलते हैं। और यूँ हम भी पहुँच गए बीड़। समुद्र तल से लगभग पाँच हजार फुट की ऊँचाई पर बसा हुआ बीड़ कभी एक गाँव था। एक छोटा-सा गाँव। आज भी यह एक गाँव ही है, लेकिन अब यह आधुनिक गाँव है। आधुनिक सुविधाओं से लैस, लेकिन अपनी प्रकृति में गाँव का परिवेश।

अखरोट, पाइन के पेड़ों से घिरा बीड़ बिलिंग पैराग्लाइडिंग के लिए विश्वभर में जाना जाता है। सुविधा के लिए हम 'बीड़ बिलिंग' शब्द का इस्तेमाल करते हैं, लेकिन 'बीड़' एक घाटी है तो 'बिलिंग' एक पहाड़। पैराग्लाइडिंग के लिए यह एक आदर्श जगह है। इतनी आदर्श कि दुनियाभर के सैलानी बीड़ आते हैं और पैराग्लाइडिंग का लुत्फ उठाते हैं। बिलिंग पर्वत की ऊँची सतह पर पैराग्लाइडिंग का टेक ऑफ प्वाइंट है। उनका मुख्य उद्‌देश्य पैराग्लाइडिंग करना और प्रकृति के बीच रहना ही होता है। दुनिया का सबसे ऊँचा स्थान है बिलिंग पर्वत का वह टेक ऑफ प्वाइंट, जहाँ से पैराग्लाइडिंग के लिए पैराशूट बाँधकर पर्वत से बीड़ की ओर कूद लगाई जाती है। उसके बाद शुरू होता है पैराग्लाइडिंग का आनंद भरा सफर। बीड़ की ऊँचाई पाँच हजार फुट है, लेकिन पैराग्लाइडिंग के लिए हमें बिलिंग पर्वत के उस स्थान पर जाना होता है, जिसे हम टेक ऑफ प्वाइंट कहते हैं। आठ हजार की ऊँचाई से एक पैराशूट के सहारे बीड़ घाटी की ओर मुँह करके एक साहसभरी कूद और आप हवा में तैरना शुरू कर देते हैं। हमारे साथ होते हैं ट्रेनर और प्रकृति की हवाएँ। यह सब तो मैंने एक दिन बाद बिलिंग पर्वत के टेक ऑफ प्वाइंट पर जाकर देखा। पर्यटक खूब हैं और ट्रेनर भी। पैराशूट एक-एक करके बिछा दिया जाता है। संयोग से हवाएँ उस रोज बहुत तेज थीं तो जरा से झटके से ही पैराशूट खुल रहा था और ग्लाइडर पाँच-सात कदम भागने के बाद ही हवा में तैरने लगता था। मेरे पास भी एक के बाद एक, दो-तीन गाइड या कहिए ट्रेनर आए और ग्लाइडिंग करने के लिए पूछा। मैं इसके लिए तैयार होकर नहीं गया था। ऊँचाई पर जाकर ठंडक बढ़ जाती है। आपके पास कम-से-कम एक जैकेट होना जरूरी है, लेकिन मैं तो एक कुरते-पायजामे में ही वहाँ चला गया था। गाड़ी से नीचे उतरा तो तेज हवा के झोंकों ने बता दिया कि यहाँ बहुत देर ठहरना सरदी को न्योता देना है। मैंने उन्हें अपनी उम्र का हवाला देते हुए टरका दिया। लेकिन एक ट्रेनर मानने वाला नहीं था। जब मैंने उसे अपनी उम्र अस्सी बताई तो उसने अविश्वास से मेरी ओर देखा और बोला, कोई बात नहीं, अस्सी-पिच्चासी के लोग भी ग्लाइडिंग कर सकते हैं। मैंने हाथ जोड़ लिये।

मेरे पास खड़ा एक व्यक्ति पहले ही पैराग्लाइडिंग कर चुका था और अब उसमें उसकी रुचि नहीं थी। शशि भी बेहद थकी हुई थी, सो उसने भी जाने से मना कर दिया था। उत्साह से भरे लोग एक-के-बाद एक उड़ान ले रहे थे और मैं मन मसोसकर खड़ा उन्हें हवा में तैरते हुए देख रहा था। उन्हें देखकर आनंदित भी हो रहा था। बिलिंग के इस आठ हजार फुट के टेक ऑफ प्वाइंट से टेक ऑफ करके लैंडिंग बीड़ में होती है। यह भी दुनिया के लैंडिंग प्वाइंट में दूसरे स्थान पर है। वहीं पर बीड़ का मुख्य बाजार भी है। वस्तुतः, आस-पास कई गाँव हैं। ये गाँव, बाजार, चौगान, आदि सब मिलकर अब बीड़ ही कहलाने लगे हैं।

जिस शाम हम पहुँचे उसी शाम हम और हमारा परिवार भी। शाम को महफिल सज गई। खाना हमने बाजार से ही मँगवा लिया था। जैसे-जैसे रात गहराती जाती है हम अपने परिसर की सारी बत्तियाँ बंद कर देते हैं। थोड़ी ही देर में जुगनू अपनी ज्योति बिखेरते हुए नमूदार होते हैं। एक-दो नहीं, अनगिनत जुगनू। अँधेरे में जुगनुओं का चमकना, जैसे अँधेरे में देखना है। रात कितनी भी अँधेरी हो, लेकिन जुगनू जितनी रोशनी तो हम सब बिखेर ही सकते हैं। एक जुगनू मेरे हाथ पर आ बैठता है। उसे मैं बिलकुल पास से देख सकता हूँ। एक बच्चे को कोई नया खिलौना मिलने की जो खुशी होती है, वैसी ही खुशी मुझे हो रही थी। वह जैसे मुझे बता रहा हो कि हालात कैसे भी हों, एक जुगनू जैसी रोशनी तो इनसान दे ही सकता है। धीरे-धीरे जुगनुओं की चादर-सी दिखने लगी। इतने जुगनू हमने कभी खजुराहो की यात्रा पर आज से पचास साल पहले देखे थे। उस रोज भी तारों से भरा आसमान था और आज भी। शहर में रहते हुए सितारे और जुगनू हमारी कल्पना से बाहर हो गए हैं।

एक शाम मृगांक अपने उन दोस्तों को बुला लेता है, जिन्हें उसने बीड़ में अर्जित किया है। यह बात अगले दिन की ही है। दो परिवार और एक उसकी महिला मित्र। इधर, मेरे साथ शशि, हमारी बेटी शालिनी, दामाद धीरज और दोनों नाती हेमांक तथा मृगांक थे।

> **राजगुंधा घाटी अभी बीड़ की तरह से विकसित नहीं हुई। 9,000 फुट की ऊँचाई पर स्थित इस घाटी में अभी नेटवर्क भी पूरी तरह से उपलब्ध नहीं है, लेकिन यहाँ की चरागाहें और हरियाली आपके मन को अंदर तक उल्लास से भर देती हैं। एकदम शुद्ध हवा। मुझे वहाँ केवल एक छोटा-सा होटल दिखाई दिया। शायद जो लोग भीड़-भाड़ से एकदम दूर रहना चाहते हैं यह उनके लिए एक आदर्श स्थान है। हम वहाँ एक छोटे-से ढाबे से कढ़ी चावल आदि लेकर खाते हैं।**

मृगांक अपनी प्रकृति से ही सामाजिक है। वह जहाँ भी जाता है, सामाजिक संबंध बनाने में उसे देर नहीं लगती। बातों का सिलसिला चला तो सब बीड़ से जुड़े अपने-अपने अनुभव साझा करने लगे। एक बात सबने कही कि वे बीड़ कभी भी छोड़ना नहीं चाहते। हालाँकि, हिमाचल प्रदेश से बाहर के लोग यहाँ अपनी संपत्ति नहीं खरीद सकते, लेकिन लीज पर जमीन या मकान देने का रिवाज आम बात है। संपत्ति वहाँ के बाशिंदों की और व्यापार कर रहे हैं दूसरे प्रदेशों के लोग। कपड़ा यहाँ बेहद सस्ता है। खाना-पीना भी महँगा नहीं है। और मौसम! बस, समझिए कि तापमान 30 डिग्री पार पहुँचते ही बादल मँडराने लगते हैं और दे झमाझम बारिश।

धान, गेहूँ आदि की खेती होती है। सब्जियाँ भी लोग अपने-अपने घरों के लिए उगा लेते हैं। हमारे सामने ही एक खेत था। एक सुबह देखा तो एक महिला अपने छोटे-से खेत से ताजा-ताजा प्याज निकाल रही थी। मैंने निवेदन किया कि क्या दो-चार प्याज हमें मिल सकते हैं? उस महिला ने सहर्ष पाँच-छह प्याज दे दिए। सच मानिए कि उससे अधिक स्वादिष्ट प्याज मैंने अपने जीवन में इससे पहले कभी नहीं खाया था। कमोबेश ऐसा ही स्वाद वहाँ की हर सब्जी में है।

अगले दिन बेटे प्रशांत का परिवार भी आ गया। अब पूरा परिवार बीड़ में ही था। आस-पास। शाम को हम सब मिलकर बैठते। हमारे कमरे के बाहर ही एक बड़ा दालान था। ऊपर से पारदर्शी तरीके से ढका हुआ। अब बारिश भी हो रही थी। अँधेरा घना हुआ तो जुगनुओं ने फिर अपने पंख फैला दिए। हमारे शहरी पौत्रों, अयान और अमय ने पहली बार जुगनुओं को चमकते हुए देखा था।

घूमने के लिए बाजार बहुत बड़ा नहीं है, लेकिन इतना छोटा भी नहीं कि आप पैदल घूम सकें। हमलोग पैराग्लाइडिंग के लैंडिंग प्वाइंट पर पहुँचते हैं और देखते हैं कि एक-के-बाद एक पैराग्लाइडर हवा के भरोसे जमीन की कदमबोसी कर रहे हैं। उन सभी के चेहरों पर एक खास तरह की चमक है। जैसे कि कोई जंग जीत ली हो।

बीड़ में खाने के लिए तरह-तरह के व्यंजन, जिनमें दक्षिण भारतीय, उत्तर भारतीय, इटालियन और इंटर कॉन्टिनेंटल आदि सब उपलब्ध हैं। हमलोग हर तरह के व्यंजन का लुत्फ उठाते हैं।

अगली सुबह हमलोगों ने राजगुंधा घाटी जाने का कार्यक्रम बनाया। बीड़ से लगभग एक-डेढ़ घंटे का सफर। यह सफर ही सबसे ज्यादा आनंद देने वाला लगा। रास्ते में बादल बिलकुल हमारे हाथों में थे। इतने पास कि गाड़ी के शीशे पूरी तरह से गीले हो रहे थे। इन बादलों को हम छू सकते थे, पी सकते थे। राजगुंधा घाटी अभी बीड़ की तरह से विकसित नहीं हुई। 9,000 फुट की ऊँचाई पर स्थित इस घाटी में अभी नेटवर्क भी पूरी तरह से उपलब्ध नहीं है, लेकिन यहाँ की चरागाहें और हरियाली आपके मन को अंदर तक उल्लास से भर देती है। एकदम शुद्ध हवा। मुझे वहाँ केवल एक छोटा-सा होटल दिखाई दिया। शायद जो लोग भीड़-भाड़ से एकदम दूर रहना चाहते हैं यह उनके लिए एक आदर्श स्थान है। हम वहाँ एक छोटे-से ढाबे से कढ़ी चावल आदि लेकर खाते हैं। इसका स्वाद शहरी कढ़ी चावल से एकदम अलग है। यहाँ शहर का असर अभी बहुत कम है। थोड़ा और आगे चले जाइए तो बड़ा ग्रां मिल जाएगा। यहाँ भी प्रकृति अपने उरूज पर है। झरने और नदी आपको प्रफुल्लित कर देंगी।

हम बीड़ की ओर लौटते हैं। रास्ते में हमारी गाड़ी का टायर फट जाता है। धीरज और मृगांक जल्दी से टायर बदल देते हैं। स्टेपनी ऐसे ही वक्त पर काम आती है। जानने लायक बात यह है कि ऊपर से आने वाली हर गाड़ी का ड्राइवर रुककर पूछता है कि कोई मदद चाहिए? हमारे पास सभी औजार थे। टायर बदला गया और फिर आगे की यात्रा शुरू होती है।

अगले दिन मृगांक की मुँहबोली माँ चिग्गी के यहाँ पार्टी होती है। उन्होंने भी एक बड़ा-सा रिज़ॉर्ट लीज पर लिया हुआ है और पर्यटकों को किराए पर देते हैं। चिग्गी का पति सोम भी मिलनसार और खुशमिज़ाज है। चिग्गी ने यहाँ आकर रिसर्च की और वहाँ उपलब्ध जड़ी बूटियों आदि का तेल निकालकर अपना व्यापार शुरू किया, जो चल निकला। यानी यहाँ काम की सुविधाएँ अनेक हैं।

हमारे दिल्ली लौटने का वक्त है। हवा में पैराग्लाइडर उड़ रहे हैं। हम एक बार फिर प्रदूषण भरे माहौल में पहुँचने के लिए तत्पर हैं, लेकिन हवाई उड़न खटोले हमें दूर तक दिखाई देते रहते हैं।

वस्तुतः, बीड़ बिलिंग भारत की पैराग्लाइडिंग राजधानी है और विश्वभर में इसी नाम से जानी जाती है। आप पैराग्लाइडिंग या ट्रैकिंग के शौकीन हैं तो यह जगह आपके लिए है और अगर नहीं भी हैं, तो प्रकृति का आनंद लेने के लिए वहाँ कुछ दिन रह ही सकते हैं।

# दिनकर
# समग्रता में समझने की जरूरत

महान हिंदी साहित्यकार रामधारी सिंह 'दिनकर' का व्यक्तित्व बहुआयामी था, किंतु विडंबना यह है कि उनके केवल कवित्व पक्ष की चर्चा हुई है। कविताओं में भी अधिकतर उन कविताओं की, जिनमें ओज है, लेकिन यह उनकी कविताओं का एक पक्ष है। उनकी कविताओं में प्रेम और माधुर्य की रसधारा भी उतनी ही बलवती है। दिनकर ने खुद लिखा है कि उन्हें सुयश तो मिला 'हुंकार' से, लेकिन उनकी आत्मा बसती है 'रसवंती' में। वैसे, 'रसवंती' के प्रकाशन पर कुछ विद्वानों तथा आलोचकों को आश्चर्य हुआ। उन्हें लगा, जैसे एक संन्यासी गृहस्थ आश्रम में लौट रहा है।

दिनकर शुरू से क्रांति एवं क्रांतिकारियों के ऊपर लिखते रहे। 19 दिसंबर, 1927 को

**सुधांशु रंजन**

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी सुधांशु रंजन प्रसिद्ध टीवी पत्रकार रहे हैं। वर्ष 2022 में दूरदर्शन डीडी से अपर महानिदेशक पद से सेवानिवृत्त। उन्होंने अपने कार्यकाल में अनेक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों और प्रधानमंत्री के विदेश दौरों की रिपोर्टिंग कीं।

**प्रकाशन** : जयप्रकाश नारायण एवं रामधारी सिंह 'दिनकर' के जीवनचरित के अतिरिक्त, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अनेक कहानियाँ और कविताएँ प्रकाशित

**संप्रति** : स्वतंत्र लेखन के क्षेत्र में सक्रिय

**संपर्क** : मोबाइल– 9868527070


अशफाक उल्ला खाँ को फैजाबाद जेल में फाँसी दे दी गई। उनकी कविता 'शहीद अशफाक के प्रति' 'युवक' में छपी :

माँ की मीठी गोद छोड़कर
प्रलय-वेली पर खिलना।
कितना उन्माद आह!
रहा होगा फाँसी से मिलना।

13 सितंबर, 1929 को क्रांतिकारी जतिन दास का लाहौर जेल में 63 दिनों के अनशन के बाद निधन हो गया। फिर 'युवक' में ही उनकी कविता प्रकाशित हुई :

निर्मम नाता तोड़ जगत से
अमरपुरी की ओर चले।
बंधन-मुक्ति न हुई, जननि की गोद
मधुरतम छोड़ चले।

1928 में बारदोली (गुजरात) में वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में किसानों का आंदोलन सफल हुआ। दिनकर ने उस सत्याग्रह के ऊपर दस गीत लिखे, जो 'विजय-संदेश' नाम से एक पुस्तिका के रूप में छपी। यह उनका पहला काव्य-संग्रह है। लंबे समय तक इसकी चर्चा 'बारदोली-विजय' के रूप में होती रही। स्वयं दिनकर को भी सही नाम याद नहीं था। बाद में, शेखपुरा जिले के मेहुस गाँव के पुस्तकालय में उल्लिखित पुस्तक मिली तो सही नाम पता चला।

इसमें संकलित कविताएँ हैं—'विजय-संदेश', 'मातृ-वंदना', 'बारदोली-वंदना', 'विजय गायन', 'जनसत्ता', 'बारदोली में', 'अचरज', 'विजयी पटेल', 'ललकार', 'मनमोहन गांधी' एवं 'अंतिम संदेश'। इन कविताओं पर, खासकर 'बारदोली-वंदना' पर, बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय

विरचित 'वंदे मातरम्' का प्रभाव साफ झलकता है। उदाहरणार्थ,

बल-रति जोड़िनी
रिपु-रद तोड़िनी
अरि-गौरव-गिरि-गर्व्व मड़ोरनि।
कठिन-कर्म्म-सारिणी तू सत्वर विल्सन-मारिणि बन्दे
बीरबारदोली बन्दे।

1930 का वर्ष राजनीतिक रूप से काफी उथल-पुथल वाला था। बलिदानी क्रांतिकारी हँसते-हँसते फाँसी के फंदे को चूम रहे थे। 'युवक' में उनकी क्रांतिकारी कविताएँ लगातार प्रकाशित हो रही थीं, जिनसे युवाओं को काफी प्रेरणा मिलती थी। उन्होंने बाबू राजेंद्र प्रसाद से इच्छा जताई कि वे पढ़ाई छोड़कर आंदोलन में भाग लेना चाहते हैं। राजेंद्र बाबू ने संदेश भिजवाया कि पढ़ाई नहीं छोड़ें, कविता के जरिये जनता को जगा रहे हैं, जो एक बड़ा काम है। इस तरह उनकी लेखनी अनवरत चलती रही। महात्मा गांधी पर अनेक कविताएँ उन्होंने लिखीं।

गांधी का प्रभाव तो उनके ऊपर बहुत था, परंतु हिंसा-अहिंसा का द्वंद्व उनके अंदर बना रहा। 1947 में गांधी के ऊपर उनकी सबसे लंबी कविता आई, जिसमें गांधी जी का प्रभाव साफ दिखता है :

अंगार हार उनका, जिनकी
सुन हांक समय रुक जाता है,
आदेश जिधर का देते हैं,
इतिहास उधर झुक जाता है।

किंतु भारत-चीन युद्ध के बाद उन्होंने गांधी एवं नेहरू पर सीधा सवाल किया। 'आज कसौटी पर गांधी की आग है' शीर्षक कविता में उन्होंने लिखा :

किसे लीलने को आई यह लाल लपट है?
गांधी पर यदि नहीं, और किस पर संकट है?

जवाहरलाल नेहरू पर तो और तीखा प्रहार किया :

भोर में पुकारो सरदार को,
जीत में जो कभी बदल देते थे हार को।
तब कहो ढोल की तह पोल है,
नेहरू के कारण ही सारा गंडगोल है।

1939-40 में तो दिनकर की पुस्तकें एक-के-बाद एक आती रहीं, किंतु 'द्वंद्व गीत' के बाद करीब छह वर्षों तक उनकी कोई भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई। 1946 में 'कुरुक्षेत्र' का प्रकाशन हुआ, जिसने उनकी कीर्ति में चार चाँद लगा दिया। दिनकर के अपने शब्दों में यह 'भावना नहीं, कर्तव्य का काव्य' है। इस काव्य को उन्होंने लिखना आरंभ किया 1941 में, जब वे सीतामढ़ी में पदस्थापित थे और यह पूर्ण हुआ 1946 में, जब वे पटना में युद्ध प्रचार विभाग में तैनात थे। उन्होंने स्पष्ट किया कि इसकी रचना इसलिए नहीं की, जैसा कि कुछ लोग मानते हैं, कि उस समय द्वितीय विश्व युद्ध चल रहा था और उनका स्थानांतरण युद्ध प्रचार विभाग में कर दिया गया था : 'ये दोनों बातें सच हैं, किंतु वे 'कुरुक्षेत्र' काव्य की प्रेरणा नहीं थीं। अहिंसा को विफल होते मैंने 1921 में भी देखा था और सन् 1931 में भी। फिर भी अहिंसा पर मेरी थोड़ी-सी श्रद्धा बनी हुई थी (जैसी वह आज भी है)। सन् 1941 में स्थिति यह थी कि गांधी जी आंदोलन छेड़ने में हिचकिचा रहे थे और युवक समझते थे कि आंदोलन छेड़ा भी गया, तो वह कुचल दिया जाएगा। इस स्थिति में मुझे वही चिंतन शुद्ध दिखाई दिया, जो 'कुरुक्षेत्र' में है। अहिंसा अगर परम धर्म है, तो हिंसा को आपद धर्म मानना ही पड़ेगा। और इस मान्यता से भी निस्तार नहीं है कि जिसका आपद्धर्म नष्ट हो जाएगा, उसका परम धर्म भी नहीं बचेगा।'

'कुरुक्षेत्र' की रचना आरंभ करने के पहले उन्होंने 'कलिंग विजय' नामक कविता लिखी थी, जिसमें गांधीवाद पर जोर है। युद्धभूमि में व्यापक नरसंहार एवं रक्तपात को देखकर अशोक के मन में जो निर्वेद पैदा हुआ था, उसी का वर्णन इसमें है। उन्हीं दिनों एक दिलचस्प घटनाक्रम में दिनकर का संपर्क एक प्रेतात्मा से हुआ, जो

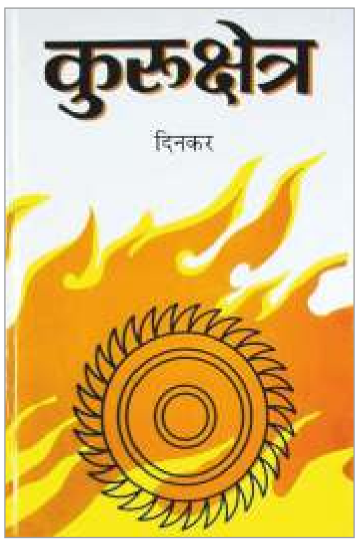

जर्मन थी और अपना नाम रोजा लक्जमबर्ग (सोशलिस्ट रोजा नहीं) बताती थी। उस प्रेतात्मा ने पटना इंजीनियरिंग कॉलेज के छात्र श्रीनिवास को पकड़ लिया था। लोगों ने दिनकर से उसका परिचय करा दिया और 1941 से 1943 तक वे लोग प्रेतात्मा के संपर्क में रहे। उसके कहने पर दिनकर ने अपनी कविता 'कलिंग विजय' उसको सुनाई। कविता सुनते ही वह आग-बबूला हो गई : 'यह कविता नहीं, यह तो कायरपन है। तुम तो युद्ध को निंद्य बताते हो। कहीं बिना युद्ध के कोई देश आगे बढ़ा है?' एक दिन दिनकर ने उससे पूछा कि जवाहरलाल के बारे में उनकी क्या धारणा है। उसने कहा, 'वह तो हिटलर, गांधी और स्टालिन का समन्वित रूप हैं।'

दिनकर ने अपनी तीन महत्वपूर्ण कृतियों के लिए महाभारत से विषय-वस्तु एवं कथ्य लिये—'प्रण-भंग', 'कुरुक्षेत्र' एवं 'रश्मिरथी'। वैसे, 'उर्वशी' का भी उपाख्यान महाभारत में है। लगता है कि 'कुरुक्षेत्र' की रचना करने के बाद उन्हें एहसास हुआ कि काव्य में विचारों का प्राधान्य नहीं होना चाहिए, वरन उसमें कुछ कथा-संवाद भी होना चाहिए। इसी को ध्यान में रखकर 'रश्मिरथी' की रचना की गई, जिसका प्रकाशन 1952 में हुआ। 'रश्मिरथी का नायक कर्ण है, जिसके साथ हुए अन्याय को उजागर करना कवि का ध्येय है। एक कुँवारी माँ ने अपने ही गर्भ से पैदा होने वाली संतान को त्याग दिया और उसका लालन-पालन एक शूद्र परिवार में हुआ। उसकी कानीनता उसका पीछा करती रही और उसे 'सूत-पुत्र' कहकर बार-बार अपमानित किया गया। कर्ण को लक्ष्य कर कवि ने जातीय व्यवस्था पर करारा प्रहार किया है। एक सूत-पुत्र को नायक बनाकर दिनकर ने नायक की पारंपरिक अवधारणा को तोड़ा है। कर्ण में धीरोदात्त नायक के लगभग सारे गुण हैं। वह आत्मश्लाघारहित, क्षमाशील, गंभीर, अतुल बलशाली, स्थिर तथा विनम्र है, परंतु वह राजा या उच्च कुल का नहीं है।

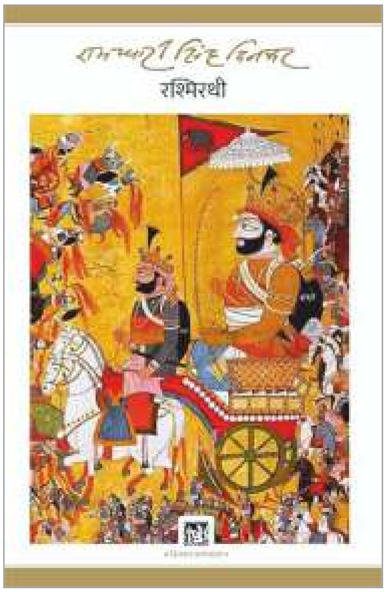


'रश्मिरथी' में दिनकर का जोर कर्मवाद पर है, जो नहीं मानता कि छोटे कुल में जन्मे, पले-बढ़े वीर या राजा नहीं हो सकते। 'रश्मिरथी' की रश्मि समता की भी रश्मि है, जिसे छिटकते देखना चाहता है कवि। इसका संकेत 'कुरुक्षेत्र' के सप्तम सर्ग में भी है। कर्मवत्ता की सत्ता जाति, वर्ण या वर्ग तक सीमित नहीं है। कोई भी व्यक्ति तपश्चर्या, लगन एवं साहस के बल पर महानता का सोपान चढ़ सकता है।

दिनकर के माधुर्य पक्ष का उत्कर्ष 'उर्वशी' में पूरे आवेग के साथ प्रकट होता है। इसमें एक ओर स्त्री अस्मिता का आकुल स्वर है, तो दूसरी ओर ऐंद्रिय संवेदनाओं और इंद्रियातीत होने की लालसाओं का द्वंद्व है। कवि ने इसमें चार स्तरों पर प्रेम दिखाया है। पुरुरवा पुरुषार्थ चतुष्टय के अनुसार काम चाहता है, जिसमें धर्म-अधर्म, नीति-अनीति का विचार किया जाता है, किंतु वह द्वंद्व में है। उर्वशी और रंभा स्वच्छंद प्रेम में विश्वास करती हैं। रंभा साफ कहती है :

प्रेम मानवी की निधि है, अपनी तो यह क्रीड़ा है,
प्रेम हमारा स्वाद, मानवी की आकुल पीड़ा है।
जनमी हम किसलिए? मोद सबके मन में भरने को।
किसी एक को नहीं मुग्ध जीवन अर्पित करने को।

दिनकर को यश तो प्रचुर मिला, फिर भी उनकी प्रतिभा का आकलन समग्रता में नहीं हो पाया। इसमें शामिल है उनका गद्य, जो उनके पद्य से कम सशक्त नहीं है। किंतु उसका समुचित मूल्यांकन नहीं हो पाने का कारण शायद यह है कि गद्य लेखन में वे देर से आए। उनके गद्य लेखन में सबसे चर्चित किताब है 'संस्कृति के चार अध्याय', जिस पर उन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार मिला। लेकिन इस पर विद्वानों ने कई सवाल भी खड़े किए हैं। किशोरी दास वाजपेयी ने तो इसके जवाब में 'संस्कृति का पाँचवाँ अध्याय' नामक पुस्तक लिख दी।

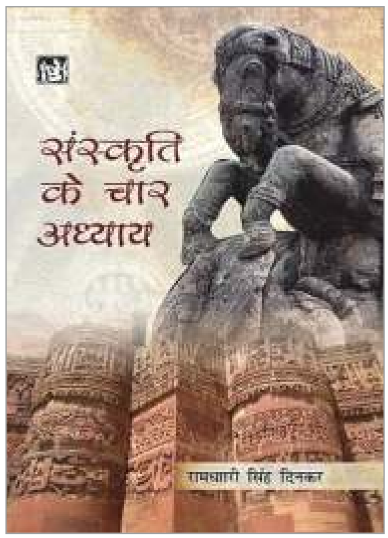


उन्होंने अनेक पश्चिमी कविताओं का भावानुवाद भी किया, जो बिलकुल मौलिक दिखती हैं। बाल साहित्य भी लिखा। इन पक्षों पर चर्चा लगभग नहीं हुई है। संक्षेप में, उनका साहित्य विस्तृत और बहुमुखी था।

# गाँव के पुस्तकालय ने बदला जीवन

गाँव में एक पुस्तकालय था, पर कुछ लोगों का उसका वहाँ होना कोई अर्थ नहीं रखता था। उसकी वहाँ वैसी उपयोगिता नहीं थी, जैसी कि किसी मंदिर या अस्पताल या किसी श्मशानगृह की होती है। वह उस झरने की तरह भी उपयोगी नहीं था, जहाँ से लोग अपने पीने के लिए ठंडा पानी लाते थे।

पर वह था। वहाँ कभी-कभी कुछ थके-बूढ़े आते थे, पर उनकी दिलचस्पी किताबों में कम, एक-दूसरे में ज्यादा होती थी। वे गाँव की बातें करने वहाँ रोज-ब-रोज आया करते थे और जोर-जोर से बोलते थे। उन्हें कोई रोकता नहीं था। वह आदमी भी

नहीं, जो किताबों के पैकेट बड़े उत्साह से खोलता था। वहाँ ऐसे दिशा-निर्देश भी नहीं थे कि यहाँ शांति बनाई रखी जाए, क्योंकि सब तरफ शांति ही शांति थी। वहाँ तो बस किताबें थीं, जो बोलती थीं। न जाने किस जन्म से वे ताले में बंद थीं, जैसे आजीवन कारावास सजा पाई हों। उनकी चाबी माँगने की कोई हिम्मत नहीं करता था— वे पड़ी रहती थीं, उन लेखकों के बारे में सोचती हुई, जो उनको लिखकर ढेरों ईनाम पाकर अब राजधानी में बस गए थे। वहाँ कुछ किताबें विधवाओं की तरह थीं, जिनके लेखक कभी के मर गए थे और कुछ वैसी किताबें भी थीं, जिन्हें उनके लेखक ने भी कभी देखा नहीं था। कितनी अजीब बात थी कि उनके लेखक उन्हें लिखते थे और जीते जी देख नहीं पाते थे। कुछ ऐसी भी किताबें थीं, जो अब उनके लिखने वालों के पास भी नहीं बची थीं। वहाँ कुछ पढ़े-लिखे बेरोजगार भी आते थे, बड़े शहरों में अपने लिए नौकरियाँ तलाशने। 'रोजगार समाचार' में कभी-कभी उन्हें आकर्षक नौकरियाँ दिख जातीं और वे भविष्य के सुंदर सपनों में खो जाते। वे एक-दूसरे को जोर से पढ़के सुनाते कि कहाँ वैकेंसी निकली है और फॉर्म भरकर भेजने की तैयारी में जुट जाते। वे उस गाँव के एकमात्र फोटो खिंचवाने जाते, जो उस फार्म में चिपकाई जाने वाली थी। उस गाँव में रंगीन फोटो खींचने का एक भी स्टूडियो नहीं था।

वह गाँव अभी भी श्वेत-श्याम दौर की फिल्मों का गाँव था और औरतें वहाँ दिन-रात खेत में काम में जुती रहती थीं। वहाँ विवाह योग्य लड़कियाँ भी फोटो खिंचवाने के लिए साड़ी पहनकर जातीं और एक स्टूल पर खड़े गमले के पास खड़ी होकर


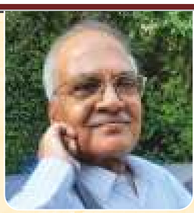

**राजेन्द्र उपाध्याय**

**जन्म :** 20 जून, 1958, तहसील सैलाना, जिला रतलाम, मध्य प्रदेश

**शिक्षा :** बी.ए., एल.एल.बी., एम.ए.

**संप्रति :** आकाशवाणी से संयुक्त निदेशक पद से सेवानिवृत्त

**प्रकाशन :** कविता-संग्रह, व्यंग्य-संग्रह, साक्षात्कार-संग्रह, गद्य-संग्रह, कहानी-संग्रह, यात्रा-वृत्तांत प्रकाशित एवं विभिन्न पुस्तकों का संपादन। राजस्थान सरकार के शिक्षकों की किताब 'बादल और पतंग' का संपादन, एन.सी.ई.आर.टी. के लिए सुभद्राकुमारी चौहान पर वृत्तचित्र का निर्माण। एनबीटी से 'दीवार के पार, दुनिया अपार' शीर्षक से एक यात्रा-वृत्तांत प्रकाशित

**संपर्क :** rajendra.upadhyaya58@gmail.com

फोटो खिंचवाकर आतीं। वह फोटो बारी-बारी से बाहर भेजने के काम आता था। चश्मा लगाने वाली लड़कियाँ भी ऐसे फोटो खींचते समय चश्मा उतार लेती थीं।

> **अधेड़ उम्र के लोग मेज पर फैले अखबारों में महज भविष्यफल देखने ही आया करते। इसके बाद उनकी दिलचस्पी तीज, त्योहार, व्रत आदि में ही होती। ज्यादा-से-ज्यादा ये 'जीप उलटी : दस मरे', 'लॉरी उलटी : आठ मरे', 'भैंस पानी में गिरी'—जैसी खबरों में ही रस लेते। उनकी दुनिया सीमित थी, सीमित सरोकारों वाली दुनिया में समाचार भी सीमित हो गए थे। 'कहाँ किस जंगल में बाघ निकला' आदि-आदि।**

उस गाँव में एक भी सिनेमाघर नहीं था। वह गाँव फिल्मों की हर उस चर्चा से दूर था, जो अकसर छोटे और कभी-कभी बड़े शहरों में होती रहती है कि तुमने क्या 'लगान' देख ली है? उस गाँव में एक भी पोस्टर नहीं दिखा कि फलाने थियेटर में फलानी फिल्म चल रही है। 'संपूर्ण रंगीन चित्र' जरूर देखिए। धर्मेंद्र-हेमा मालिनी की अदाकारी या सलमान खान-ऐश्वर्य राय की अदाकारी। उस गाँव में दूध और दही तो बिकता था, पर मांस नहीं। अंडे जरूर कहीं-कहीं किसी दुकान पर देखे जाते थे, पर उनको खाने वाले कम थे। सब्जियाँ भी सब तरह की नहीं मिलती थीं। कुछ सब्जियों के नाम तो वहाँ के लोगों ने भी सुने भर थे।

उस गाँव में देसी-अंग्रेजी शराब की एक भी दुकान नहीं थी। वहाँ मद्य-निषेध सांस्कृतिक रूप से अपने आप लागू था। बूढ़े हुक्का गुड़गुड़ाते थे, पर सिगरेट पीते नौजवान भी लगभग नहीं दिखते थे। वहाँ नौजवान रंगीन चश्मे भी नहीं लगाते थे। लड़कियाँ भी चश्मा नहीं लगाती थीं। लड़कियाँ सलवार-सूट में रहती थीं। वहाँ हिंदी साहित्य के कई लेखकों और कालजयी कवियों के चित्र लगे थे, जो वहाँ अपनी किताबें छोड़कर 'गोलोक' को चले गए थे। अब उनकी पुस्तकें इतनी काजलयी हो गई थीं कि कोई उन्हें पढ़ने का साहस नहीं करता था। यह सोचकर कि वहाँ उन किताबों की उस अँधेरी गुफा में पता नहीं कौन-सा जीव-जंतु बैठा हो, जो उन्हें छूने पर, उनकी जिल्दों से बाहर आ जाए। वास्तव में, कई बार उन किताबों के बीच से कोई छिपकली निकल आती थी। एकाध बार किसी-न-किसी किताब को छूना चाहा तो किताबों के रजिस्टर के पास ऊँघते आदमी को उसकी चाबी ही नहीं मिली। शाम को उसने ढूँढ़ने का वादा करके उसे चलता कर दिया। शाम को चाबी मिली तो ताला खोलने में मशक्कत करनी पड़ी।

ताला खोलने पर जैसे पिंजरे में बंद मुर्गियाँ फड़फड़ाती हैं, वैसे वे किताबें चैन की साँस लेने लगीं। कुछ औंधे मुँह पड़ी थीं, जैसे मर गई हों, कुछ टेड़ी-तिरछी घायल अवस्था में पड़ी थीं। उनको खोलने वाले मर गए थे, उनको पढ़ने वाले भी शायद मर गए थे। अब उन्हें कोई छूता नहीं था। प्रसाद ग्रंथावली, रांगेय राघव और मुक्तिबोध रचनावली में लोगों को रुचि नहीं रह गई थी। वृंदावनलाल वर्मा रचनावली भी इतिहास की वस्तु हो गई थी। वहाँ कई सरकारी, गैर-सरकारी संस्थाएँ किताबें मुफ्त में भेजती थीं।

वहाँ कभी-कभी कोई लड़का आता और जेनरल नॉलेज की किताबें माँगने लगता। कोई लड़की इतिहास, भूगोल की किताबें माँगती। पुस्तकालय की मेज पर ऊँघता आदमी पूछता—"आधुनिक या प्राचीन इतिहास।" इसी तरह, कोई भूगोल की किताबें माँगती। उसे भी ऐसा ही कोई सवाल दागकर 'रफा-दफा' कर देते थे, कोई सिद्ध करता कि वे यहीं इन्हीं पहाड़ों के रहने वाले थे। यहीं काली मंदिर में पूजा करते थे। यहीं 'मेघदूत' उन्होंने लिखा था। यहीं भागीरथी, अलकनंदा है, यहीं मेघों का 'गर्जन-तर्जन' उन्होंने सुना। यहीं 'ऋतु संहार' उन्होंने लिखा। ऐसी प्राकृतिक सुषमा के बीच ही उन्होंने प्रकृति वर्णन किया, लेकिन उज्जैन जैसी शुष्क जगह में कालिदास 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' कैसे लिख सकते थे?

कोई बूढ़ा तंबाकू खाने वाला दूसरे बूढ़ों को तंबाकू की तकलीफों और बुराइयों के बारे में बताता, इससे कितनी जल्दी कैंसर हो सकता है। हाल ही में एक पत्रिका में बताया गया था कि इससे कितनी जल्दी कैंसर हो सकता है। हाल ही में एक पत्रिका में मैंने पढ़ा कि तंबाकू कैसे फेफड़ों को गला देता है। नौजवान लड़के अखबारों के पीछे के पन्ने पर छपी फिल्मी हिरोइनों की भड़कीली तस्वीरें एक-दूसरे को दिखाते और मुस्कराते।

अधेड़ उम्र के लोग मेज पर फैले अखबारों में महज भविष्यफल देखने ही आया करते। इसके बाद उनकी दिलचस्पी तीज, त्योहार, व्रत आदि में ही होती। ज्यादा-से-ज्यादा ये 'जीप उल्टी : दस मरे', 'लॉरी उलटी : आठ मरे', 'भैंस पानी में गिरी'—जैसी खबरों में ही रस लेते। उनकी दुनिया सीमित थी, सीमित सरोकारों वाली दुनिया में समाचार भी सीमित हो गए थे। 'कहाँ किस जंगल में बाघ निकला' आदि-आदि। कभी किसी होली के दिन या किसी सार्वजनिक अवकाश के दिन लाइब्रेरी पर ताला लगा देखकर बूढ़े अचरज में पड़ जाते कि अब क्या करें? उनके घर पर रोज अखबार भी नहीं आता था, जिसे वे पढ़कर वक्त गुजारें, ऊँघता हुआ आदमी खुश होता कि आज वह देर तक भात खाकर लुंगी पहनकर सो रहेगा। लेकिन जिनकी दुनिया इससे बँधी थी वे क्या करें? कहाँ जाएँ? किस अखबार में देखें अपने समाचार, भविष्यफल, ज्योतिष, व्रत, त्योहार?

एक बार बूढ़ी काकी का बेटा किसी बात पर माँ से रूठकर कहीं चला गया। दो-तीन दिन तक घर ही नहीं आया। काकी का रो-रोकर बुरा हाल। सबने खूब समझाया। हारकर पत्रकार बाबू को पकड़ा। सबने चंदा इकट्ठा कर काकी के बेटे शिवकुमार की तस्वीर 'पत्रकार बाबू' को दी और अखबार में छपवाया—'गुमशुदा' वाले कॉलम में। उसमें काकी का पता भी दिया था। नीचे शिवमंदिर के सामने।

# अनुवाद
# एक सांस्कृतिक सेतु

मनुष्य-समाज भूमंडलीकरण के दौर से गुजर रहा है। दुनिया के देश करीब से करीबतर आते जा रहे हैं। विज्ञान और तकनीक के अन्वेषण निरंतर हो रहे हैं। संचार, व्यापार और संवाद की गति बढ़ गई है। इन सबको दुनिया की विभिन्न भाषाओं में अभिव्यक्त करने के लिए अनुवाद एक साधन, एक माध्यम के रूप में लगातार अपनी भूमिका निभा रहा है। नई-नई खोजों और अनुसंधानों ने मानव-जीवन के लिए कई प्रकार की सुख-सुविधा उपलब्ध कराई हैं। लेकिन यह दुनिया के किसी एक भाषा में अंकुरित होती है और यह सुविधा विभिन्न भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से पहुँचाई जाती है। इसलिए वर्तमान में अनुवाद का महत्व पहले की तुलना में कई गुना बढ़ गया है।


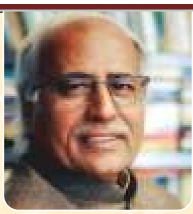

**डॉ. दामोदर खड़से**

लेखक कवि-कथाकार हैं।

**प्रकाशन :** पाँच उपन्यास, आठ कथा-संग्रह, 11 कविता-संग्रह, चार भेंटवार्ता, एक समीक्षा ग्रंथ और 23 कृतियों के मराठी से हिंदी में अनुवाद प्रकाशित

**सम्मान :** साहित्य अकादेमी (अनुवाद पुरस्कार), उ.प्र. हिंदी संस्थान, केंद्रीय हिंदी संस्थान, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, संस्कृति विभाग, म.प्र. सरकार आदि द्वारा सम्मानित

**संपर्क :** मोबाइल– 9850088496

ई-मेल– damodarkhadse@gmail.com

'राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020' में मातृभाषा में शिक्षा को महत्वपूर्ण माना गया है। इस नीति के अनुसार 'अनुवाद' को भारतीय भाषाओं के सशक्तीकरण के लिए विशेष माना गया है। इससे भारतीय भाषाओं के लिए अनुवाद की कई संभावनाएँ उभरकर सामने आएँगी। अनुवाद द्वारा सांस्कृतिक और साहित्यिक आदान-प्रदान के नए दरवाजे खुलेंगे। साहित्य और संस्कृति के अलावा, विज्ञान, तकनीक, भूगोल जैसे विषयों को अनुवाद के माध्यम से एकरूपता सौंपकर बहुभाषी भारत की नई पीढ़ी को समग्रता का पाठ पढ़ाया जा सकेगा।

अनुवाद एक कला है। वह भाषा का एक प्रगामी कौशल है। इसके लिए आवश्यक है कि अनुवादक के पास संबंधित साहित्य का आकलन करने की क्षमता हो और इसके प्रति वह संवेदनशील हो। अनुवाद व्यक्ति-सापेक्ष होता है। हर किसी की क्षमता और कुशलता के अनुसार उसका स्वरूप बदलता रहता है, इसलिए यह कला की श्रेणी में आ जाता है। अनुवाद एक ओर जहाँ व्यक्तिनिष्ठ है, वहीं समाज-जीवन, लोक-संस्कृति, साहित्य, दर्शन, विचार, भाषा, अभिव्यक्ति, मान्यताओं, लोक-भाषा, लोक-प्रचलित संकल्पनाओं से जुड़े होने के कारण इसकी प्रक्रिया सहज नहीं होती। कोई कलाकृति जब निर्मित होती है, तब उसके विविध आयाम खुले तौर पर न भी उभरते होंगे, पर उसके अलग-अलग वैचारिक-व्यूह अपनी समग्रता सँजोए रहते हैं। उस भाषा में व्यक्त दर्शन, इतिहास, उसका विचार, समाज-शास्त्र और सांस्कृतिक परिदृश्य उसके आशय से परिलक्षित होता है। उसी आशय को अनुवाद के माध्यम से दूसरी भाषा में ढालना होता है। ऐसा करते समय उस विषय विशेष की शैली, रूप-गंध और आशय को निष्कर्षतः ज्यों-का-त्यों अभिव्यक्त करना होता है। कौशल इसी में होता है कि न कुछ छोड़ा जाए और न ही कुछ जोड़ा जाए।

अनुवाद की प्रक्रिया में कई प्रकार की चुनौतियाँ सामने आती हैं। दोनों भाषाओं पर समान अधिकार तो अपेक्षित है ही, विषय के आकलन की कुशलता भी होनी चाहिए। विशेष रूप से सांस्कृतिक संदर्भों के बारे में अत्यंत सतर्कता की आवश्यकता होती है।

> **"अनुवाद केवल भाषा परिवर्तन तक सीमित नहीं होता। उचित प्रति-शब्द, व्याकरण का प्रतिपालन, भाषा की प्रकृति के साथ सांस्कृतिक संदर्भों का भी ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है। अनुवाद सांस्कृतिक आशय को अचूकता से दूसरी भाषा में सौंपता है, तब वह सार्थक और स्थायी होगा। किसी भी भाषा में उसके मुहावरे और कहावतें धरोहर होते हैं। वे केवल शब्दों तक सीमित न होकर भाषा के इतिहास, संस्कृति, आचार-विचार, मान्यता, धर्म, दर्शन, परंपरा आदि की अभिव्यक्ति होते हैं।"**




डॉ. भालचंद्र नेमाड़े के अनुसार, "अनुवाद एक पाठ का एक भाषिक-सांस्कृतिक आवरण से दूसरे भाषिक-सांस्कृतिक आवरण में स्थानांतरित करने की द्विभाषी प्रक्रिया है।" कविता के क्षेत्र में यह चुनौती और सघन हो जाती है। शब्दग्रहण से अर्थग्रहण करते समय प्रकट अभिव्यक्ति का पुनर्सृजन करना होता है। कई बार अर्थग्रहण करते समय कई प्रकार की चुनौतियाँ उठ खड़ी होती हैं। आशय और शैली को दूसरी भाषा में ले जाते समय संतुलन लड़खड़ाने लगता है। पर कुशल अनुवादक इस स्थिति को सँभाल ले जाता है और आशय को शैली समेत अनुवाद के दूसरे किनारे तक ले जाता है। ऐसा करते समय लक्ष्य भाषा की प्रकृति, संस्कृति, स्वभाव को ध्यान में रखना होता है। सांस्कृतिक दृष्टि से स्रोत भाषा की अभिव्यक्ति को लक्ष्य-भाषा में ले जाते समय रिश्ते, भौगोलिक वातावरण, इतिहास, मान्यताएँ, संस्कार, पौराणिक संदर्भ आदि का आकलन बहुत आवश्यक है। फिर, लक्ष्य भाषा में समानार्थी शब्द की सटीक अभिव्यक्ति पर ध्यान केंद्रित करना होता है। पर्यावरण या सांस्कृतिक दृष्टि से या सामाजिक या लोक-प्रचलन की दृष्टि से जितनी समानता होगी, अनुवाद उतना आसान होगा। साथ ही, कई बार एक ही शब्द अलग-अलग भाषाओं में भिन्न अर्थ में प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ—मराठी में 'शिक्षा' शब्द 'दंड' के लिए प्रयोग होता है और हिंदी में 'शिक्षण' (education) के लिए। 'घास' निवाला के लिए और हिंदी में 'तृण' (grass) के लिए। इसी तरह, बाँग्ला में 'सत्कार', 'उत्तरक्रिया' के लिए और हिंदी सहित कुछ भारतीय भाषाओं में स्वागत-सत्कार के अर्थ में। ऐसे ही कन्नड़ के प्रसिद्ध लेखक यू.आर. अनंतमूर्ति का चर्चित उपन्यास 'संस्कार' है। यहाँ 'संस्कार' अंतिम-संस्कार से अभिप्रेत है, जबकि अन्य भाषाओं में 'अच्छे संस्कार देने' से है। कई बार प्रादेशिक भाषाओं के शब्दों के प्रतिशब्द दूसरी भाषाओं में आसानी से नहीं मिलते। शब्दकोश के अर्थ प्रचलित नहीं होते, ऐसे में चुनौती दुगुनी हो जाती है। मराठी में एक शब्द है—'खळी' अर्थात किसी के हँसने पर गाल में गड्ढा पड़ जाना। 'गड्ढा' सौंदर्य में ग्रहण लगाता है। लेकिन गुलजार ने एक फिल्म में इसका प्रयोग बहुत सुंदर ढंग से किया है—

'जहाँ तेरे पैरों के कँवल गिरा करते थे<br>
हँसे तो दो गालों में भँवर पड़ा करते थे!'

अंग्रेजी के 'डिंपल' और मराठी के 'खळी' के लिए 'भँवर पड़ना' सटीक पर्याय है। जबकि नदियों में बाढ़ के दौरान भी भँवर होते हैं। दोनों के अर्थों को संदर्भ के अनुसार प्रयोग करना अनुवाद के लिए कभी-कभी चुनौती बन जाता है। खान-पान, रस्मो-रिवाज, कृषि, वनस्पतियों, मिथकों, मान्यताओं, ऐतिहासिक संदर्भों, भौगोलिक स्थितियों, पर्यावरण जैसे क्षेत्रों में हो रहे भाषिक संक्रमण और उसके इतिहास से अच्छी तरह अवगत होना होता है। तभी अनुवाद करते समय भाषा के सांस्कृतिक पक्ष को अधिक स्पष्टता, सार्थकता और संवेदनशीलता के साथ न्याय दिया जा सकता है। खान-पान को लेकर भी अनुवाद में काफी चुनौतियाँ होती हैं। महाराष्ट्र में होली के अवसर पर घरों में 'पुरणपोली' बनाने का रिवाज है। इसका अनुवाद 'मीठी रोटी' नहीं किया जा सकता। इसलिए कई शब्दों को जैसा का तैसा रखकर फुटनोट के माध्यम से सही अर्थों और संदर्भों में पहुँचाया जा सकता है।

अनुवाद केवल भाषा परिवर्तन तक सीमित नहीं होता। उचित प्रति-शब्द, व्याकरण का प्रतिपालन, भाषा की प्रकृति के साथ सांस्कृतिक संदर्भों का भी ध्यान रखना अत्यंत आवश्यक है। अनुवाद सांस्कृतिक आशय को अचूकता से दूसरी भाषा में सौंपता है, तब वह सार्थक और स्थायी होगा। किसी भी भाषा में उसके मुहावरे और कहावतें धरोहर होते हैं। वे केवल शब्दों तक सीमित न होकर भाषा के इतिहास, संस्कृति, आचार-विचार, मान्यता, धर्म, दर्शन, परंपरा आदि की अभिव्यक्ति होते हैं। यदि अंग्रेजी कहावत 'A bad workman blames his tools' का अनुवाद 'एक बुरा कारीगर अपने औजारों को दोष देता है' कर दिया जाए तो यह शब्द के लिए प्रतिशब्द तो है, वाक्य में व्याकरण का भी दोष नहीं है, पर भावार्थ से कोसों दूर है। सांस्कृतिक दृष्टि से आशय की यात्रा खंडित हो जाती है। ऐसा अनुवाद टूटे पुल की तरह होता है, जिसे समझने के लिए भाषा में खड़खड़ाहट, दुरूहता, अटपटापन और अर्थांकन की उलझन होती है। कुशल अनुवादक न सिर्फ शब्द और वाक्य की सार्थकता का ध्यान रखता है, बल्कि भाषा विशेष के सांस्कृतिक संदर्भों के प्रति सचेत होता है। वह दो भाषाओं का ज्ञाता होकर एक मजबूत पुल का निर्माण करता है। इसीलिए यह चुनौती बहुत बड़ी होती है कि अनुवादक दोनों भाषाओं की संरचना, व्याकरण, उपयुक्त समानार्थी शब्द तथा सामाजिक-सांस्कृतिक-ऐतिहासिक संदर्भों की पर्याप्त जानकारी से परिपूर्ण हो।

साहित्य, समय का सच्चा इतिहास होता है। कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक के माध्यम से लेखक अपने समय को रेखांकित करता है। व्यंग्य एक महत्वपूर्ण विधा है, जिसमें हमारे वर्तमान की परछाईं होती है। हरिशंकर परसाई ने पाँच सितंबर के अवसर पर एक लेख लिखा—'शिक्षक दीन'... यह शीर्षक ही अपने आपमें संपूर्ण बयान है। इसका अनुवाद किसी ऐसी भाषा में आसान नहीं है, जिसमें 'दिन' और 'दीन' में इतना अंतर न हो। जहाँ भाषिक विशिष्टता में हास्य-व्यंग्य का पुट होता है, वहाँ अनुवाद पूरी तरह यशस्वी होने के लिए विशिष्ट भाषिक कौशल की माँग करता है। संभवतः, यही कारण रहा हो कि मराठी के अत्यंत लोकप्रिय लेखक पु.ल. देशपांडे तुलनात्मक रूप में अ-मराठी भाषियों तक उस परिमाण में नहीं पहुँच पाए। व्यंग्य-विधा का अनुवाद करते समय बिंबों, प्रतीकों, मिथकों सहित शिल्प को ज्यों-का-त्यों लक्ष्य भाषा में ढालना एक बड़ी चुनौती होती है।

अनुवादक दो सभ्यताओं के बीच सांस्कृतिक-सेतु का काम करता है। उसके सामने सांस्कृतिक संदर्भों की चुनौतियाँ होती हैं। इनमें आंचलिकता का अनुवाद करते समय सबसे बड़ा प्रश्न यह होता है कि स्रोत-भाषा को किस अंचल में समेटा जाए। 'परती-परिकथा', 'राग दरबारी' जैसी कृतियों को किसी दूसरी भाषा में ले जाते समय स्थानीय शब्दों की मिठास का अनुवाद बड़ी चुनौती होता है। मराठी के 'बारोमास' उपन्यास में कथाकार सदानंद देशमुख ने ग्रामीण संस्कृति, कृषि-शब्दावली और विदर्भ में ज्यादातर कपास उत्पादन और किसानों के सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को उजागर किया है। कपास से जुड़े सारे शब्द कभी-कभी तकनीकी रूप ले लेते हैं तथा जिस क्षेत्र में कपास नहीं उगाई जाती उस इलाके की भाषा में ऐसे शब्दों का अभाव होता है। इसलिए ऐसे संदर्भों का अनुवाद बहुत चुनौतीपूर्ण हो जाता है। इसी तरह, दलित साहित्य में वर्णित जीवन ऊपर से देखने पर पूरे देश में कमोबेश एक जैसा लग सकता है, लेकिन यदि गहराई से देखें तो स्थितियाँ समान नहीं होतीं। अतः सटीक शब्दों की कमी, सांस्कृतिक भिन्नता और सामाजिक-राजनैतिक जागरण की असमानता अनुवाद को प्रभावित करती है। मानक भाषा के अनुवाद में यह चुनौती कम होती है। इसीलिए अमृता प्रीतम, रवींद्रनाथ ठाकुर, शरतचंद्र, शिवाजी सावंत, दिलीप चित्रे, वि.स. खाण्डेकर, भैरप्पा, सुब्रह्मण्य भारती, प्रतिभा राय, नारायण रेड्डी, वासुदेव नायर, मुहम्मद बशीर, बंकिमचंद्र चटर्जी, विजय तेंदुलकर, प्रेमचंद, मोहन राकेश जैसे कितने ही कृतिकार हैं, जिनकी कृतियों ने अपनी भाषाओं की सीमा लाँघते हुए दूसरे भाषिक प्रांतों में प्रवेश पाया है।

साहित्यिक अनुवाद हमारे जीवन के कई सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों से रूबरू करवाते हैं। परंतु, ऐसे पाठों का अनुवाद बहुत आसान नहीं होता। स्रोत भाषा की कई संकल्पनाएँ, मुहावरे बहुत गहरे पैठे होते हैं। उन्हें उसी गहराई से लक्ष्य भाषा में पहुँचाने की कई चुनौतियाँ होती हैं। क्योंकि कई बार समान सांस्कृतिक जमीन लक्ष्य और स्रोत भाषा की नहीं होती। दोनों भाषाओं की भाषिक स्थिति समान होने के बावजूद सांस्कृतिक धरातल भिन्न होने से आशय, प्रवाह, शैली प्रभावित होती है। कई बार तो अननुद्य स्थिति उत्पन्न हो जाती है। लेकिन दो संस्कृतियों का ज्ञाता—अनुवादक ऐसी समस्याओं को सुलझाकर सरल, सुगम और स्वाभाविक अनुवाद कर लक्ष्य भाषा को सांस्कृतिक दृष्टि से संपन्न करता है।

पद्य का अनुवाद सबसे अधिक चुनौतीपूर्ण होता है। इसमें दो पंक्तियों के बीच, अल्पविराम और परिच्छेदों में भी अर्थांश छिपा रहता है। पुराणों, इतिहास, समाज-जीवन, संस्कृति की मान्यताओं के संदर्भ लक्ष्य भाषा में उतनी ही प्रमुखता और मुखरता से उपलब्ध हों यह आवश्यक नहीं। इसके लिए अनुवादक को अपनी एक रणनीति तैयार करनी होती है। इसमें शब्द, अर्थ, भावार्थ का रस-ग्रहण कर दूसरी भाषा में अभिव्यक्त होना होता है। यह कार्य बहुत चुनौतीपूर्ण होता है। ऐसे में अनुवादक को भाषा और संस्कृति का संतुलन बनाकर आगे बढ़ना होता है।

वर्तमान भूमंडलीकरण के दौर में दुनिया सिमट रही है। प्रवासी जनसंख्या या विश्व-नागरिकों की संख्या दिनोंदिन बढ़ रही है। एक सामासिक संस्कृति का विकास हो रहा है। इस तरह के प्रवासी-साहित्य का अनुवाद करते समय स्वदेशी-विदेशी संस्कृति का तालमेल बैठाते हुए, लक्ष्य भाषा को कई नई अभिव्यक्तियाँ सौंपी जा सकती हैं। विजय तेंदुलकर, मोहन राकेश, गिरीश कर्नाड आदि के नाटक भारतीय भाषाओं में ही नहीं, विदेशी भाषाओं में भी मंचित हो रहे हैं। अपनी भाषा की सांस्कृतिक विरासत दूसरी भाषा में अनूदित होकर जा रही है। कालिदास, सुकरात, शेक्सपियर, टॉलस्टाय, रवींद्रनाथ टैगोर जैसे साहित्यकार-चिंतक विश्व-फलक पर अनुवाद के माध्यम से विराजमान हैं। इसका श्रेय अनुवादकों को भी है। उन्होंने सांस्कृतिक आशय की रक्षा करते हुए सटीक अर्थग्रहण किया और हूबहू अर्थांकन किया। सांस्कृतिक संदर्भों के अनुवाद में चुनौतियाँ तो हैं, पर अनुवाद-कौशल से अपेक्षित सिद्धि हासिल हो सकती है।

# साक्षर बनता देश

संवाद मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता है। लेकिन जरा उस अद्भुत और आह्लादपूर्ण संवाद की कल्पना कीजिए, जब कुछ आड़ी-तिरछी रेखाओं और चिह्नों के माध्यम से मनुष्य ने पहली बार अपने अंतर्मन के भावों या विचारों या संदेश को दूसरे तक पहुँचाने में सफलता प्राप्त की होगी। निश्चय ही मनुष्य के विकास का यह एक ऐतिहासिक क्षण रहा होगा। कहने की जरूरत नहीं कि शब्द को लिखित रूप में लाते ही एक अभूतपूर्व घटना घट गई। लिखित

**विनोद दास**

**जन्म :** 01 अक्तूबर, 1956, कमोली, बाराबंकी, उत्तर प्रदेश

**शिक्षा :** एम.ए. (अंग्रेजी), लखनऊ विश्वविद्यालय

**प्रकाशन :** 'खिलाफ हवा से गुजरते हुए', 'वर्णमाला से बाहर', 'कुजात' और 'पतझड़ में प्रेम' (कविता-संग्रह); 'बीच धार में' (कहानी-संग्रह); 'सुखी घर' (उपन्यास) एवं अनुवाद, आलोचना, साक्षात्कार आदि प्रकाशित। इसके अतिरिक्त, 'अंतर्दृष्टि' एवं भारतीय भाषा परिषद की मासिक पत्रिका 'वागर्थ' के संपादन कार्य से जुड़े रहे।

**सम्मान :** भारतीय ज्ञानपीठ युवा पुरस्कार (1986), श्रीकांत वर्मा सम्मान (1996), केदारनाथ अग्रवाल सम्मान (2000) और शमशेर सम्मान (2003)

**संप्रति :** स्वतंत्र लेखन

**संपर्क :** मोबाइल– 9867448697

ई-मेल : tiwarvk1955@yahoo.com


शब्द धीरे-धीरे प्रभुसत्ता में बदलते गए। शायद उस समय मनुष्य ने कल्पना भी न की होगी कि अपने संवाद को अभिलेख के रूप में स्थायी और सार्वजनीन बनाने के लिए जिन टेढ़े-मेढ़े प्रतीकों को वह अंगीकार करने जा रहा है, वे कभी प्रभुसत्ता में बदल जाएँगे तथा मनुष्य और दुनिया को अनुशासित करने की भूमिका भी निभाने लगेंगे। आज अक्षर मनुष्य की नियति के न्यायाधीश बन गए हैं। ये सही-गलत का फैसला देते हैं। एक निरक्षर व्यक्ति हताश स्वर में यह कहने के लिए जब विवश होता है कि यदि कागज में लिखा है तो सही ही होगा, तो वस्तुतः, उसके विवेक की आँख पर पट्टी बँधी नहीं होती, बल्कि एक तरह से वह उन अक्षरों की प्रभुसत्ता को स्वीकार कर रहा होता है। ऐसे समाज में जहाँ अक्षर इतने ताकतवर हों और देश की एक बड़ी आबादी निरक्षर हो वहाँ साक्षरता के महत्व को सहज ही समझा जा सकता है।

किसी सामान्य व्यक्ति से अनायास यह पूछ लिया जाए कि साक्षरता से क्या तात्पर्य है, तो वह अमूमन यह कहेगा कि अक्षरों और अंकों का ज्ञान होना साक्षरता है। यह साक्षरता के वृहद और व्यापक अर्थ को सीमित करना है। साक्षरता सिर्फ वर्णमाला के अक्षरों या अंकों का लिख-पढ़ भर लेना नहीं है वस्तुतः, उससे कहीं अधिक है। साक्षरता सही मायनों में तब तक अपना कोई औचित्य नहीं पाती जब तक एक साक्षर अपनी दुनिया को पहचान न सके, उस पहचान से स्वयं को जान न सके और उस जानने से दूसरों को परख न सके। दूसरे शब्दों में, निरक्षरों में आलोचनात्मक विवेक और वैज्ञानिक समझ के स्फुरण को उत्पन्न करना साक्षरता का प्रमुख उद्देश्य है।

लेकिन कोविड काल के बाद जिस तेजी से हमारे देश में डिजिटल प्रयोग बढ़ा है, उसे देखते हुए साक्षरता की दृष्टि से उसे ही साक्षर समझा जाना चाहिए, जिसे डिजिटल ज्ञान भी हो। दूसरे अर्थों में, जो व्यक्ति कम-से-कम अपने काम के लिए कोई मोबाइल ऐप डाउनलोड कर सके, डिजिटली भुगतान कर सके और राशि प्राप्त कर सके। यह खुशी की

बात है कि सरकार इस दिशा में सचेत है और अब साक्षरता के हस्तक्षेपों में इसे भी शामिल कर लिया है।

आपको जानकार यह आश्चर्य होगा कि आजादी के समय हमारे देश की साक्षरता दर मात्र 27.16 प्रतिशत थी, जो राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण कार्यालय के अनुसार वर्ष 2023-24 में बढ़कर लगभग 81 प्रतिशत हो गई है। शहरों में साक्षरता दर 88.9 प्रतिशत और गाँवों में यह 77.5 प्रतिशत है। सच कहें तो यह प्रगति काफी धीमी रही है।

> **देश के संविधान में निहित लोकतंत्र, समता और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के साथ हमें ऐसी सांस्कृतिक छतरी को बनाए रखना होगा, जिसमें एक ओर हमारी साझा संस्कृति की अपनी रंगत, पहचान बनी रहे और दूसरी ओर, हमारे देश के संविधान में निर्दिष्ट आदर्शों, स्वप्नों और मूल्यों को व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित किया जा सके।**

दरअसल, वर्ष 1950 में हमारे देश में 2.1 लाख प्राइमरी स्कूल थे, जो अब बढ़कर लगभग 15 लाख हो गए हैं। साक्षर करने के लिए पहले प्रौढ़ शिक्षा योजना चलायी गई, लेकिन उसकी प्रगति, गति और परिणाम बहुत अनुकूल नहीं रहे। वर्ष 1998 में साक्षरता मिशन की स्थापना के साथ साक्षर बनाने की प्रक्रिया में ही गति नहीं आई, बल्कि उसकी अर्थ परिधि को भी विस्तार दिया गया। 2009 में साक्षर भारत मिशन बहुत जोर-शोर से शुरू हुआ। 6-14 वर्ष के बच्चों के लिए सर्वशिक्षा अभियान चलाया गया। शिक्षा गारंटी योजना के तहत एक किलोमीटर के दायरे में अगर कोई औपचारिक स्कूल नहीं है तो उनकी कमी को पूरा करने के लिए ऐसे शिक्षा केंद्र खोले जाते हैं, जहाँ वे बच्चे पढ़ते हैं, जिनका नाम स्कूल में कभी नहीं लिखा गया या जो किसी कारणवश स्कूल छोड़ने को मजबूर हो गए थे। इन सब हस्तक्षेपों से आज साक्षरता दर में सुधार आया है। यह लक्ष्य है कि 2030 तक भारत में सभी को संपूर्ण साक्षरता प्राप्त हो जाए।

ग्रामीण क्षेत्रों के गरीबों और स्त्रियों में साक्षरता-दर कम है। पिछड़ी और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों में साक्षरता कम है। आर्थिक कारणों से वे स्कूल की पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं। यही हाल स्त्रियों का भी है। एक स्त्री को साक्षर करना एक पूरे परिवार को साक्षर करना है। स्त्री साक्षरता एक ऐसा चक्रीय निवेश है, जिससे समाज में अक्षर-ज्ञान की पूँजी निरंतर बढ़ती रहती है। दरअसल, अक्षर-ज्ञान को स्त्री किसी कंजूस की तरह अपने तक सीमित नहीं रखती, बल्कि इस अमूल्य धरोहर को पीढ़ी-दर-पीढ़ी अंतरित करती है। स्त्री साक्षरता की पहली बड़ी समस्या लिंग भेद के आधार पर तय किया गया श्रम का विभाजन है। हमारे यहाँ यह प्रबल धारणा रही है कि पुरुष घर के बाहर का काम करेंगे और स्त्रियाँ घर में चूल्हा-चौका और बाल-बच्चों का पालन-पोषण करेंगी। हालाँकि, पितृसत्तात्मक समाज द्वारा निर्धारित श्रम विभाजन का यह ढाँचा धीरे-धीरे जर्जर होकर चरमरा रहा है। आधुनिक समय में स्त्रियाँ उन कार्यों को भी सफलतापूर्वक संपादित कर रही हैं, जिन्हें पहले केवल पुरुष वर्ग के लिए उपयुक्त समझा जाता था।

साक्षर होने से सभी आर्थिक और सामाजिक व्याधियाँ खत्म हो जाएँगी, यह सोचना भी गलत है। सच तो यह है कि साक्षर संस्कृति में भी उपभोक्तावाद, सांप्रदायिकता, अवसरवादिता, मूल्यहीनता, असंवेदनशीलता और अकल्पनीय भ्रष्टाचार का उन्मेष दिखाई दे रहा है, वहीं निरक्षर संस्कृति में अंधविश्वास, अज्ञानता, धार्मिक रूढ़ियाँ और सामाजिक कुरीतियाँ व्याप्त हैं, लेकिन साक्षर संस्कृति की ओट लेकर निरक्षरों के जीवन में अक्षर-प्रवेश का निषेध करना अनुचित है। साक्षरता के जरिये वह स्वविवेक पैदा होगा और वे इन सामाजिक व्याधियों से मुक्त हो सकेंगे।

जीवन की तरह संस्कृति भी समय के साथ परिवर्तनशील है। पिछले हजारों वर्षों से विभिन्न संस्कृतियों और परंपराओं के बीच सामंजस्य, सहिष्णुता और लचीलेपन के फलस्वरूप हमारे देश में विभिन्न धर्मों और परंपराओं के बीच कुछ विकसित अंतःसूत्रों को साझा संस्कृति कहते हैं, जिन पर साक्षरता आंदोलन पर बल देने की जरूरत है। देश के संविधान में निहित लोकतंत्र, समता और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के साथ हमें ऐसी सांस्कृतिक छतरी को बनाए रखना होगा, जिसमें एक ओर हमारी साझा संस्कृति की अपनी रंगत, पहचान बनी रहे और दूसरी ओर हमारे देश के संविधान में निर्दिष्ट आदर्शों, स्वप्नों और मूल्यों को व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित किया जा सके।

साक्षरता आंदोलन के कई हल्कों में निरक्षरों के साथ बच्चों या अबोधों की तरह बरताव किया जाता है। यह सहज ही मान लिया जाता है कि उन्हें अक्षर-ज्ञान नहीं है तो वे संज्ञान के स्तर पर एक बच्चे की तरह हैं। उनके साथ ऐसे बर्ताव किया जाता है, गोया वे इसके पहले जीवन को देखना, समझना जानते ही नहीं थे। बच्चों का मन एक कोरी स्लेट सरीखा होता है, जिस पर कोई रेखा खींचना आसान है, जबकि वयस्कों के साथ ऐसा कर पाना जटिल और चुनौती भरा कर्म है। उसे आप जो भी ज्ञान देना चाहेंगे, उसे स्वीकार करने के पहले वयस्क अपने पिछले अर्जित अनुभवों तथा ज्ञान की रोशनी में उसे जाँचेगा। दरअसल, समय और समाज के ओले और कड़ी धूप को अपनी नंगी त्वचा पर महसूस करते हुए हर निरक्षर वयस्क अपनी सोच व समझ का भूगोल बनाता है। उनकी सोच के भवन में सेंध लगाए बिना उन्हें साक्षर करना मुश्किल ही नहीं, असंभव है। इस लक्ष्य में तभी सफलता प्राप्त की जा सकती है जब निरक्षर के अंतः प्रदेश में प्रवेश करके उनकी पहले से बनी धारणाओं के पैटर्न बिगाड़कर उसके अंतर्विवेक को समकालीन समय और समाज के अनुकूल लैंडस्केप में बदल न दिया जाए। यही वह नाजुक बिंदु है, जहाँ यांत्रिक किस्म से अक्षर-ज्ञान देने का बीड़ा उठाने वाले साक्षरता

कर्मियों के हाथ-पाँव फूलने लगते है और वे असंतोष से भरकर यह कहने लगते हैं कि इतने प्रयत्नों के बावजूद नवसाक्षरों में उत्साहवर्धक परिणाम देखने को नहीं मिलते। इसमें समझ का फेर है। अक्षर-ज्ञान जैसे संकीर्ण उद्देश्यों को ध्यान में रखने से इसके अतिरिक्त कोई नतीजा मिल भी नहीं सकता। यही वह संवेदनशील स्थल है, जहाँ साक्षरता अभियान में एक सृजनशील और अंतर्दृष्टि संपन्न साक्षरताकर्मी की प्रासंगिकता उभरकर सामने आती है।

यह सही है कि अक्षर पुल की तरह उन्हें व्यापक दुनिया से जोड़ने में सहायक होते हैं, लेकिन उनके पास जीवन-व्यवहार का व्यापक अनुभव होता है। ऐसे में उनके लिए तैयार की जाने वाली पाठ्य-सामग्री बच्चों की पाठ्य-सामग्री से भिन्न और जीवनोपयोगी होनी चाहिए। दरअसल, जन्म से लेकर मृत्यु तक हमारी जीवन धारा को निर्धारित करने वाले कुछ विश्वास, मूल्य और संस्कार होते हैं। कोई भी सामाजिक परिवर्तन तब तक संभव नहीं है, जब तक परिवर्तनशील शक्तियाँ इन विश्वासों, मूल्यों और संस्कारों को नये जीवन बिंबों में रूपांतरित करने में सफल नहीं होता। इसको जबरन किसी कानून या व्यवस्था से बदला नहीं जा सकता है। यह समाज की वह अंतर्धारा होती है, जो कानूनी व्यवस्था से कम, समाज के दैनंदिन आचार-विचार से अधिक परिचालित होती है। एक साक्षरताकर्मी इसी बिंदु पर हस्तक्षेप करता है और निरक्षरों के बने सुदृढ़ दुर्गों को भेदकर उस अक्षरों से बनी नयी सुंदर दुनिया को सृजित करता है।

शिक्षण के लिए शिक्षक का उनसे बरताव बराबरी का होना चाहिए। फब्तियों के क्रूर बाणों से उनके अंतर्मन को घायल करने से बचना चाहिए।

साक्षरता विकास की कुंजी है। यह विविध रूपों में विकास का संवाहक है। यह देखा गया है कि जिन इलाकों में वयस्कों के लिए साक्षरता के कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से चलाया गया है, वहाँ के विद्यालयों में बच्चों, खासतौर से लड़कियों, की प्रवेश-संख्या में इजाफा हुआ है। वहाँ के बाशिंदों में अंधविश्वास में कमी आई है। कई ऐसे दृष्टांत प्रकाश में आए हैं, जहाँ पहले दस्त या बुखार के लिए गाँववासी ओझा या फकीर के पास जाते थे, लेकिन साक्षरता के चलते उनमें ऐसी समझ विकसित हुई और वे यह जान-समझ पाए कि यह बीमारी है और इसके इलाज के लिए वे डॉक्टर और वैद्य-हकीम के पास जाने लगे। साक्षर होने से व्यक्ति आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से परिचित हो सकता है और नया हुनर या कौशल सीखकर सिर्फ अपनी ही आय नहीं बढ़ा सकता, बल्कि राष्ट्रीय उत्पादकता की वृद्धि में भी अपना अमूल्य योगदान कर सकता है। केरल में साक्षरता अधिक है, जिसके कारण मानव-विकास के मानदंडों के आधार पर वह प्रदेश हमेशा अग्रणी रहता है।

साक्षर कर देना ही काफी नहीं है। नवसाक्षर में पढ़ने-लिखने की निरंतरता को बनाए रखने, पुस्तकालय और वाचनालयों को खोलने और उसे समृद्ध करने की भी जरूरत है। अखबार के माध्यम से एक ओर उनको अपने समय और समाज की जानकारी मिलती रहेगी तो दूसरी ओर उनका भाषा-ज्ञान भी विकसित होता रहेगा। लेकिन यह पाया गया है कि इनके लिए किताबों का टोंटा बना रहता है। अगर कुछ अच्छी किताबें छपी भी हैं, तो उनका प्रचार-प्रसार कम होता है। यही नहीं, उनका मूल्य भी अधिक होता है, जिसके कारण गरीब नवसाक्षर उन्हें खरीद नहीं पाते। साक्षरों के लिए सरल भाषा में रोचक साहित्य और ज्ञान-विज्ञान से जुड़ी किताबें लिखवाई जानी चाहिए। इस दिशा में साहित्यकारों और प्रकाशकों को पहल करनी होगी। लेकिन यह ध्यान रखना होगा कि ज्ञान को संभ्रांत वर्ग के दृष्टिकोण से न देखा जाए। इसके असंख्य प्रमाण उपलब्ध हैं कि लोक जीवन में ज्ञान की अनेक अलिखित और मौखिक विशिष्टताएँ मौजूद हैं, जो किसी भी आधुनिक लिखित विमर्श से कमतर नहीं हैं। लेकिन लोक संस्कृति में ऐसे अनेक मूल्य और परंपराएँ देश के संविधान में व्यक्त समता, न्याय और स्वतंत्रता सरीखे मूल्यों का हनन भी करती हैं। इन पर प्रहार करने के लिए साक्षरताकर्मियों को बहुत सोच-समझकर काम करना होगा। इस कार्य के लिए लोक कलाओं, लोक संगीत और नुक्कड़ नाटक जैसे लोकप्रिय माध्यमों का उपयोग किया जाना चाहिए। कठपुतलियों के माध्यम से भी जनता में चेतना विकसित की जा सकती है। जनपक्षधरता की दृष्टि से इसका लाभ साक्षरता अभियान में उठाना चाहिए। एक साक्षर राष्ट्र, एक आत्मविश्वासी राष्ट्र भी होता है। इसके लिए पहली जरूरत है कि प्रत्येक नागरिक साक्षरता के महत्व को समझे। पंचायती राज संस्थाओं के सघन व्यापक जाल का उपयोग इस कार्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। जब साक्षरों के पास अपने सपनों का आकाश होगा तब वे उसे पाने के लिए प्रयत्न भी करेंगे।

# हिंदी साहित्य का एक और विमर्श
# प्रवासी साहित्य

विगत कुछ वर्षों में साहित्य जगत में हिंदी प्रवासी साहित्य ने अपनी दमदार उपस्थिति दर्ज की है। देश की सीमा से परे, विदेश में प्रवास के दौरान नई धरती की महक को अपने लेखन में समाहित करते और बदलते परिवेश के बदलते प्रश्नों के उत्तर तलाशते हिंदी में जो साहित्य रचा जा रहा है, उसे 'प्रवासी साहित्य' की संज्ञा दी गई है। साहित्य अथवा लेखन से पूर्व, 'प्रवासी' विशेषण चर्चा और विवाद का विषय भी बना। सामान्यतया, प्रवासी लेखकों को यह

गवारा नहीं है कि केवल देश-काल-वातावरण बदलने से उनके लेखन को हिंदी साहित्य के एक कोष्ठक में सिमटा दिया जाए। यह एक प्रकार से उनको बिरादरी बाहर करने जैसा है। कहना न होगा कि हिंदी साहित्य का यह पुराना चलन है। साहित्य को समग्रता से देखने की बात भी उठती रही है। समस्त तर्कों के बावजूद, 'प्रवासी' शब्द अपनी जड़ें जमाता रहा। कई रूपों में अपना जलवा बिखेरता रहा। आज हिंदी में प्रवासी साहित्य मंच, प्रवासी साहित्य पुरस्कार, प्रवासी साहित्य विशेषांक, प्रवासी जगत पत्रिका जैसी सामग्री हमारे इर्द-गिर्द सजी हुई है। और प्रवासी साहित्यकार भी दम-खम ठोकते हुए हिंदी के भवन में विराजित हो गया है।

यूँ तो गाँव से शहर, शहर-देहात से महानगर और अपने प्रांत से दूसरे प्रांत जाना भी प्रवास है। प्रवास में व्यक्ति के संघर्ष बदलते हैं, चुनौतियाँ बदल जाती हैं, अनुभव बदलते हैं और दृष्टि बदलती है। भीड़ में अकेले होना क्या होता है, वह जान जाता है। मौके पर अपनों का होना क्या मायने रखता है, इसके मर्म को समझने लगता है।

वस्तुतः, गाँवों से महानगरों में जाना या महानगरों से सुदूर आदिवासी क्षेत्रों में जाना, जनजातीय इलाकों में जाना जीवन के अनदेखे-अनछुए पहलुओं से साक्षात्कार करने सदृश होता है। बड़ी जगह से छोटी या छोटी से बड़ी जगह जाने से हमारे सत्य का विस्तार होता है। हम अपने-अपने कालखंडों में जीवनयापन कर रहे लोगों को देखते हैं। भूमंडल में मानव-व्यवहार को समझने की हमारी दृष्टि व्यापक होती है। हमारा 'मैं' छोटा होता चला जाता है। हमारे कई आग्रह क्षीण होने लगते हैं। हम समावेशी होने लगते हैं।

परिवेश बदलने से भौगोलिक विषमता के साथ-साथ सांस्कृतिक-सामाजिक द्वंद्व हमें

**सरोजिनी नौटियाल**

**जन्म :** 01 अक्तूबर, 1956, देहरादून, उत्तराखंड

**शिक्षा :** बी.ए. ऑनर्स (हिंदी साहित्य), एम.ए. (अर्थशास्त्र), बी.एड.; संस्कृत साहित्य विषय में अतिरिक्त बी.ए.

**प्रकाशन :** 'अब न नसैहों', 'धीरे-धीरे मना' (कहानी संग्रह) एवं प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कहानी, लेख, कविता, पुस्तक-समीक्षा, भेंटवार्ता आदि प्रकाशित। आकाशवाणी नजीबाबाद, देहरादून से कहानी और लेखों का प्रसारण

**सम्मान :** विभिन्न अखिल भारतीय कहानी एवं निबंध लेखन प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत

**संप्रति :** सेवानिवृत्त प्रधानाचार्या, उत्तराखंड, माध्यमिक शिक्षा

**संपर्क :** मोबाइल– 9410983596

ई-मेल : snautiyal1@gmail.com

उद्वेलित करता है। सांस्कृतिक अंतर के भी कई स्तर हैं। जो आज बाह्य समूह हैं, स्थान और स्थिति बदलने से अंतःसमूह बन जाते हैं। शहर में अपने गाँव वाला, दूसरे प्रांत में अपने प्रांत वाला, विदेश में अपने देश वाला और यूरोप में एशियाई जन अंतःसमूह में प्रविष्ट हो जाते हैं।

**आज हिंदी में प्रवासी लेखकों की उत्साहवर्धक संख्या है। अपने देश से दूर, बहुत दूर अपने चारों ओर जो बिखरा है, उसको बटोरकर कल्पना के ताने-बाने में पिरोकर व्यक्त करने की विकलता उनके लेखन में परिलक्षित होती है। उनकी शिला जैसी अचल मान्यताओं में कंपन होने लगता है। बहुत-कुछ बदलता जाता है। जीवन-शैली, आदतें, बोली-भाषा, सोच-व्यवहार और न जाने क्या-क्या। भई, जो गया है किसी बेगाने मुल्क में, उसी को तो बदलना है, मुल्क थोड़े न बदलेगा! 'जैसा देश, वैसा भेष'—पुरानी कहावत है।**

पाश्चात्य देशों में पाकिस्तानी, श्रीलंकाई, बाँग्लादेशी एवं अन्य एशियाई, यहाँ तक कि अफ्रीकियों से भी हम नैकट्य अनुभव करते हैं, तो इसके भौगोलिक, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक कारण हैं। अपने देश से एशिया के किसी देश जाने की अपेक्षा, पाश्चात्य देशों में जाने में बहुत बड़ा भौगोलिक-सांस्कृतिक विभेद दिखाई देता है। प्रथमदृष्टया ही कई मामलों में हम स्वयं को भिन्न पाते हैं। उनका खुलापन हमको चकित करता है तो उनके मानवीय मूल्य, नियमबद्धता, स्पष्टता और ईमानदारी जैसे गुणों से हम प्रभावित होते हैं। पूर्व में उपनिवेश रहे देशों के लोगों के प्रति उन देशों के लोगों का श्रेष्ठता अभिमान हमको हीनता का बोध कराता है। उनकी काया बहुत-कुछ बोलती है। रंग, नस्ल, विकास की अहमन्यता उनको अलग से ऊँचा घोषित करती रहती है। ऐसे में यहाँ, यानी एशिया से यूरोप गया प्राणी अपनी पृष्ठभूमि को लेकर कहीं संकुचित होता है, तो अपने पारिवारिक-सामाजिक मूल्यों को लेकर कहीं गर्वित भी होता है, विशेषकर भारत से गया व्यक्ति। कई कारणों से दुनिया का कोई भी देश भारत की अनदेखी नहीं कर पाता। यह अघोषित प्रिवलेज बन जाता है भारतीय के लिए। यह अकारण नहीं है कि भारतीय उपमहाद्वीप के कई मुल्कों के लोग वहाँ अपनी वास्तविक पहचान छिपाकर भारतीय नामों के पट्ट लगाकर रेस्टोरेंट आदि व्यवसायों में अपनी किस्मत आजमाते हैं।

अपनी जमीन से इतनी दूर जाने के कारण अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन टिकने और बसने के कई संघर्षों में समानता रहती है। भाषा, जलवायु, जीविकोपार्जन, नियम-कानून, तौर-तरीके, धर्म-संस्कृति वगैरह कई बातें हैं, जिनको लेकर संघर्ष की स्थिति बनती है। अपने अंदर के देश और बाहर के विदेश में मचे संग्राम से विचारों, भावनाओं, अहसासों में जो छूटता-जुड़ता है, वह वैयक्तिक अनुभूति लेखक की कलम से सार्वजनिक हो जाती है। और, यदि वह मात्र विवरण नहीं है, रिपोर्ट नहीं है, बल्कि उसमें सत्य का ऐसा उद्‌घाटन है कि बिना जोर-जबरदस्ती के बहुतों के भोगे यथार्थ से एकाकार हो जाता है तो बातों को नए मायने मिलने लग जाते हैं; सामाजिक सरोकारों की नई व्याख्या होने लगती है; नए प्रश्न खड़े हो जाते हैं; स्थापनाएँ पुनर्परिभाषित होने लगती हैं। ऐसी रचनाएँ साहित्य में ध्यानाकर्षण का विषय बन जाती हैं। अर्थ के साथ-साथ पठनीयता भी हो तो उनकी सर्वत्र चर्चा भी होने लगती है।

आज हिंदी में प्रवासी लेखकों की उत्साहवर्धक संख्या है। अपने देश से दूर, बहुत दूर अपने चारों ओर जो बिखरा है, उसको बटोरकर कल्पना के ताने-बाने में पिरोकर व्यक्त करने की विकलता उनके लेखन में परिलक्षित होती है। उनकी शिला जैसी अचल मान्यताओं में कंपन होने लगता है। बहुत-कुछ बदलता जाता है। जीवन-शैली, आदतें, बोली-भाषा, सोच-व्यवहार और न जाने क्या-क्या। भई, जो गया है किसी बेगाने मुल्क में, उसी को तो बदलना है, मुल्क थोड़े न बदलेगा! 'जैसा देश, वैसा भेष'—पुरानी कहावत है।

युवावस्था की ढलान पर पाश्चात्य मुल्कों में गए और फिर वहीं बस जाने वाले लेखकों के अनुभवों में बहुत-कुछ जुड़ गया है और पूर्व धारणाओं में बहुत-कुछ हिल गया है। निश्चित ही उनके लेखन को नए आयाम मिल गए हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है। देश के बाहर हिंदी भाषा का मान बढ़ाया है। अन्य

भाषाओं की श्रेष्ठ कृतियों का हिंदी में अनुवाद करके सुदूर विदेश और देश के बीच सेतु का काम किया है। अपने देश-समाज से इतर देश-समाज में रहने से उनकी दृष्टि में बदलाव आ जाता है, चिंतन प्रभावित होता है। यह बदलाव उनके साहित्य के जरिये देश में रह रहे लोगों की सोच को व्यापक करने का काम करते हैं। प्रतिष्ठित साहित्यकार ममता कालिया ने प्रवासी साहित्य की विषय-वस्तु और शिल्प को ताजा हवा के झोंके सदृश्य कहा तो चित्रा मुद्‌गल ने इसे जरूरी नए विचारों की संज्ञा दी है।

नई हवा के ताजे झोंकों में अपनी खुशबू के अहसास को बचाने के संघर्ष के दौरान कई स्याह-सफेद पक्षों से साक्षात्कार होता है। स्वाभाविक है कि लेखक की कलम अपनी भाषा में इस सत्य का उद्घाटन करती है। यह रहस्योद्घाटन भारत में रह रहे लोगों के लिए खिड़की का काम करता है। यह खिड़की हमें विदेश के बारे में उन तथ्यों से रू-ब-रू कराती है, जिनको प्रायः हम अपनी खुशफहमी के रहते नजरअंदाज कर देते हैं। अमेरिका में रहकर 'हवन' जैसे उपन्यास को लिखकर प्रसिद्ध प्रवासी लेखिका सुषम बेदी ने देश के उन सरल, भोले-भाले, अधीर नौजवानों को चेताया है कि 'ऑल दैट ग्लिटर्स इज नॉट गोल्ड'।

विदेश में आकर केवल पैसा कमाने की मशीन बनकर अपने जीवन को हवन कर देना ही जिंदगी नहीं है। विदेश जाने की बदहवासी व्यक्ति को किस प्रकार अवैध तरीकों के अँधेरे गर्त में धकेल देती है, यह दृश्य दिलो-दिमाग को झकझोरता तो है ही, सावधान भी करता है। इस संबंध में तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'देह की कीमत' और अर्चना पैन्यूली की कहानी 'एन.आर.आई.' उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों में अवैध तरीकों से दूसरे देशों में जाने वाले एशियाइयों की दास्तानें रोंगटे खड़ी कर देती हैं। कानूनी स्थिति, शरणार्थी नियमों का बेजा इस्तेमाल, वीजा नियमों के शिकंजे में फँसते एशियाई और अफ्रीकी मुल्कों के युवकों के प्रसंग सचेत तो करते ही हैं, साथ ही, एक सामान्य भारतीय की सोच और जुझारू प्रकृति से भी रू-ब-रू कराते हैं, वह भी दिलचस्प कथावस्तु के साथ। वस्तुतः, बाहर जाकर हिंदी के लेखकों के सत्य का विस्तार हुआ है और उनकी रचनाओं से हमारे सच का। लेखक का दृष्टिकोण, विश्लेषण, तुलना, मूल्यांकन और द्वंद्व—यह सब रूपकों में ढलकर उनकी कथा-कहानियों में प्रकट हो जाता है और एक भिन्न परिवेश को बयाँ करता है।

देश के बाहर हिंदी का परचम लहराने वालों में मॉरीशस के प्रेमचंद कहे जाने वाले अभिमन्यु अनत एक ऐसा नाम है, जो किसी परिचय का मोहताज नहीं हैं। उनका कालजयी उपन्यास 'लाल पसीना' डेढ़-दो सौ साल पहले अपनी माटी से बिछुड़कर बतौर मजदूर गए भारतीयों का सुदूर समुद्र तटीय देशों में जाने और फिर लौटकर न आ पाने का ऐतिहासिक दस्तावेज है। गुलामी, शोषण, अपमान, अन्याय, लाचारी में जीते-मरते हमारे देशवासियों की ऐसी दास्तान, जिसको जानना-समझना आज भी खून के घूँट पीने जैसा है। अभिमन्यु अनत उन्हीं भारतीयों की तीसरी-चौथी पीढ़ी के हैं। अब तकनीकी रूप से उनको प्रवासी भारतीय भी नहीं कहा जा सकता। वे भारतवंशी मॉरीशसी हैं।

वर्तमान में यूरोप में इग्लैंड को प्रवासी हिंदी लेखन का गढ़ कहा जा सकता है। उषा राजे सक्सेना, तेजेंद्र शर्मा, जकिया जुबैरी, नीना पॉल, दिव्या माथुर, कादम्बरी मेहरा, पुष्पिता अवस्थी जैसे स्थापित लेखक लंबे समय से अपने लेखन से साहित्यिक चर्चा और संवाद का विषय बने हुए हैं। यू.एस.ए. व कनाडा से सुषम बेदी, सुधा ओम ढींगरा, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, हंसा दीप ने अपने लेखन से हिंदी साहित्य में नए अध्याय जोड़े हैं। स्कैंडेनेवियन देश समूह के डेनमार्क में अर्चना पैन्यूली ने प्रवासी हिंदी लेखन की ध्वजा थामी हुई है। इनके मध्य डॉ. हरिशंकर आदेश प्रवासी साहित्यकारों में एक बड़ा नाम है। त्रिनिडाड, टोबागो और कनाडा में अपनी साहित्यिक सेवाएँ देते हुए डॉ. आदेश ने महाकाव्यों सहित बृहत् साहित्य की रचना की और देश से बाहर हिंदी शिक्षण का यशस्वी कार्य किया है। डॉ. आदेश का लेखन प्रवासी साहित्य का एक उत्कृष्ट प्रतिमान है।

प्रवासी लेखन में एक अलग सुवास है। भाषा हिंदी जरूर है, मगर खुशबू नई हो जाती है। विस्थापन से बहुत कुछ बदल जाता है। भाषा भी। हिंदी में अरबी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली आदि भाषाओं के शब्द तो कब से रचे-बसे हैं, लेकिन अब उसमें अंग्रेजी, स्पेनिश, डेनिश आदि यूरोपियन भाषाओं के शब्दों का भी सहज प्रवेश होता नजर आने लगा है। भाषा ही नहीं बदलती, बात कहने का ढंग भी बदल जाता है। यहाँ तक कि चिंतन-प्रक्रिया में बदलाव आने लगता है। दुनिया-जहान को देखते-जानते हम स्वयं को भी फिर से जानने की प्रक्रिया से गुजरने लगते हैं।

आधी उम्र भारत में गुजारने के बाद जब हम विदेश, विशेषतः पाश्चात्य जगत में प्रवेश करते हैं, तो विदेश में हमारे अंदर का देश हमें विदेश का नहीं होने देता और देश में हमारी विदेशी छवि हमें देश का नहीं लगने देती। दोनों जगह आउटसाइडर! चीजें बड़ी तेजी से बदलती लगती हैं। हम भी बदल जाते हैं। इस खोए-पाए का द्वंद्व जब लेखन में उतरने लगता है तो पाश्चात्य देशों की आबोहवा में वहाँ के स्थानों और व्यक्तियों के नामों के इर्द-गिर्द बुने कथानक और रचे चरित्रों को पढ़ते हुए भारतीय पाठक के मन में कौतुक, कसक, एक नई बात, नई अनुभूति, नई सोच, नए उद्गार के साथ-साथ नए सवाल कुलबुलाने लगते हैं। यही नयापन, यही फैलाव प्रवासी लेखकों को देश के कहानीकारों से अलग करता है। और, उनके लेखन को एक अलग विमर्श—प्रवासी विमर्श के अंतर्गत रखने का तर्क प्रदान करता है।

प्रवास के परिवेश और अनुभव में भले ही साम्य हो, लेकिन अनुभूति वैयक्तिक होती है। फिर अभिव्यक्ति कौशल का लेखन में अपना महत्व है। यह लेखक विशेष की अपनी विशिष्टता होती है। इसी अनुभूति और अभिव्यक्ति के नैपुण्य को जब लेखक के शोध-अध्ययन की प्रामाणिकता मिल जाती है, तो कृति को विश्वास के ठोसपन का आधार भी मिल जाता है और साहित्य, चित्रा मुद्गल की शब्दप्रयुक्ति को साभार लेते हुए लिख रही हूँ, 'जन इतिहास' बन जाता है। कथा साहित्य में लेखक छुपकर बैठा रहता है। लेखक अपनी भावना और विचार चरित्रों के माध्यम से ही पाठकों के समक्ष परोसता है।

यह सच है कि 'प्रवासी' शब्द से ही कोई साहित्य खास नहीं हो जाता। इसके लिए उसे साहित्यिक मानदंडों की कसौटी की परीक्षा से गुजरना होता है। यह लेखन की सिद्धहस्तता पर निर्भर करता है कि पाठक लेखक से कितना जुड़ पाता है। जिन प्रवासी साहित्यकारों को इसमें सफलता मिली है, उसमें निश्चित ही एक नाम तेजेंद्र शर्मा है। विदेशी पोशाक के अंदर धड़कते देसी दिल की धड़कन तेजेंद्र शर्मा की कहानियों में जिस कोमलता से सुनाई देती है, वह उनकी कहानियों को पाठकों की व्यथा-कथा बना देती है। वे लंबे समय से इंग्लैंड में रह रहे हैं, लेकिन स्वयं से अपने देश को वियुक्त नहीं कर पाए। रह-रहकर उनका देश, उनका पंजाबी परिवेश उनकी कहानियों को भिगो-भिगो जाता है। इसी प्रकार, पाश्चात्य समाज-संस्कृति की पृष्ठभूमि में अर्चना पैन्यूली ने जिस बेबाकी, साहस, ईमानदारी और खुलेपन से इंसानी रिश्तों को व्याख्यायित किया है, वह इस भूमंडल में मानव-सभ्यता और जीवन को समझने की दृष्टि देता है। उनकी कहानियों में हमारा इस सत्य से साक्षात्कार होता है कि इस फैले भू-पृष्ठ में रंग-आकार, भाषा-संस्कृति और प्रगति-विकास में मानव की कई प्रजातियाँ और सभ्यताएँ हो सकती हैं, लेकिन मानव संवेदना सर्वत्र एक है। सबके पास अपना अच्छा-बुरा है। जहाँ हम भारतीयों को हमारी संस्कृति और परंपराओं की ताकत गौरवशाली बनाती है, वहीं हमारी जुगाड़ू प्रवृत्ति पेशेवर यूरोपियन के समक्ष हमें ढीला-ढाला साबित करती है। कई मामलों में, विशेषकर नियमों के पालन में हम आदतन शिथिल हैं। जबकि यूरोपियन भावनात्मक दृष्टि से उदासीन, ठंडे होते हैं। प्रकृति से तटस्थ होते हैं, मगर सामान्यतया वे ईमानदार, अनुशासनबद्ध, स्पष्ट और मानवीय मूल्यों के पैरोकार होते हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि किस प्रकार हमारे सामाजिक मनोविज्ञान को प्रभावित करती है, यह अलग एक विमर्श का रूप ग्रहण करने लगता है। अर्चना पैन्यूली के नए उपन्यास 'कैराली मसाज पार्लर' में कई पूर्वाग्रहों को धता दिखाती साहसी-परिश्रमी नायिका नैंसी जब यह कहती है कि अन्याय, अपमान, नस्लभेद, रंगभेद, ये अनिवार्य भुगतान हैं और अनिवार्य भुगतान तो चुकाने ही पड़ते हैं, तो पाश्चात्य देशों के सदियों उपनिवेश रहे भारतीय उपमहाद्वीप के अल्पविकसित देशों के निवासियों के समक्ष उन विकसित देशों के लोगों में रह-रहकर छलकने वाले श्रेष्ठताबोध को समझा जा सकता है। वस्तुतः, यह उनके सामाजिक मनोविज्ञान का गुण-धर्म बन गया है। भूमंडल में बसे ये देश जाने कब से इन संस्कारों को संचित करते रहे, जिससे मानव सभ्यता के कई पन्ने स्याह हो गए। सालों के हो-हल्ले के बावजूद ये पन्ने पूरी तरह से फटे नहीं हैं। इनसे उपजी विडंबनाएँ प्रवासी लेखन का मुख्य स्वर रहा है। अर्चना पैन्यूली की कहानी 'एक सुबह आप्रवासन कार्यालय में' के अंतर्गत यह बात निकलकर सामने आती है कि कार्यालय में कार्यरत प्रौढ़ाएँ बहुत चिड़चिड़ी हैं, खासकर तीसरी दुनिया के नागरिकों के प्रति। वस्तुतः, अपमान के कई रंग होते हैं। अपमान यदि मौखिक भाषा से नहीं कर सकते तो कायिक भाषा से करेंगे। लेकिन जो युवा कर्मचारी हैं, उनमें ये प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती। दरअसल, वैश्वीकरण के प्रवाह में भाषा, संस्कृति व जीवन-शैली के क्षीण होते आग्रह हमें विश्व नागरिक बनाने की ओर अग्रसर कर रहे हैं। इस संबंध में मानव सभ्यता अभी अपने संक्रांतिकाल में है। उनके उपन्यास 'व्हेयर डू आई बिलॉन्ग' में भी इस तथ्य की ध्वनि है, जो कवि सम्मेलन में गोविंद प्रसाद शांडिल्य के वक्तव्य के रूप में एक भारतीय की प्रतिक्रिया का विस्फोट बन गई।

इसका दूसरा पक्ष भी हो सकता है, जिसको खोला है उषा राजे सक्सेना ने 'रुके कदम, यूँ आगे बढ़े' में। हमारे कई युद्ध ऐसे होते हैं, जो हम लड़ते हैं, मगर दिखाई नहीं देते। परिवार से लेकर समाज तक फैली इस समर भूमि में साँवला रंग, जाति-भेद, लिंग भेद जनित अपमान के कई प्रहार हम झेलते हैं, करते हैं या देखते हैं। लेकिन विस्थापन में चाहे स्वदेश में एक प्रांत से दूसरे प्रांत की शक्ल में हो अथवा स्वदेश से विदेश जाने के रूप में, अनेक स्थानीय और सांस्कृतिक तत्वों से हमको सामंजस्य बैठाना होता है, वहाँ के

नियम-कानूनों की आदत विकसित करनी पड़ती है, भाषा-बोली सीखनी होती है। हम जितना अपनी नई जमीन को समझेंगे, उसका सम्मान करेंगे, उतनी सहजता अनुभव करेंगे। अपनी पृष्ठभूमि, गौरवशाली इतिहास, प्राचीन संस्कृति के दंभ में हम उखड़े-उखड़े रहेंगे। न अपना श्रेष्ठ दे पाएँगे और न नई जगह का श्रेष्ठ ले पाएँगे।

**"जब हम स्वयं को परिवेश से बड़ा मानने लगते हैं तो हम अपनी सफलताओं के बोझ तले कब कुंठाओं को पोसना शुरू कर देते हैं, इसका हमें पता ही नहीं चलता। ऐसे में स्वरांगी के मित्र जेम्स जैसे मित्र और आदित्य की बुआ जैसे शुभचिंतकों की उपस्थिति बहुत मायने रखती है। जब कोई घटना, चरित्र या अनुभव मस्तिष्क में स्मृति बनकर जब-तब मन को दोलायमान करता रहता है, तो वह लेखक की रचनाओं में कभी खुले रास्ते से तो कभी चोर दरवाजे से घुसकर किस्से-कहानी में अपनी जगह बना लेता है। साथ में प्रवेशित हो जाता है देश, काल, वातावरण और इतिहास-भूगोल भी। प्रवासी लेखकों के उपन्यासों और कहानियों में छोटे-छोटे द्वीपसमूहों वाले समुद्रतटीय देशों की संस्कृति और जीवन-शैली जीवंतता से विद्यमान रहती है।"**

अनेक बार नए परिवेश में अकेलेपन के लिए कोई और नहीं, हम स्वयं जिम्मेदार होते हैं। जब हम स्वयं को परिवेश से बड़ा मानने लगते हैं तो हम अपनी सफलताओं के बोझ तले कब कुंठाओं को पोसना शुरू कर देते हैं, इसका हमें पता ही नहीं चलता। ऐसे में स्वरांगी के जेम्स जैसे मित्र और आदित्य की बुआ जैसे शुभचिंतकों की उपस्थिति बहुत मायने रखती है। जब कोई घटना, चरित्र या अनुभव मस्तिष्क में स्मृति बनकर जब-तब मन को दोलायमान करता रहता है, तो वह लेखक की रचनाओं में कभी खुले रास्ते से तो कभी चोर दरवाजे से घुसकर किस्से-कहानी में अपनी जगह बना लेता है। साथ में प्रवेशित हो जाता है देश, काल, वातावरण और इतिहास-भूगोल भी। प्रवासी लेखकों के उपन्यासों और कहानियों में छोटे-छोटे द्वीपसमूहों वाले समुद्रतटीय देशों की संस्कृति और जीवन-शैली जीवंतता से विद्यमान रहती है। अवलोकन सामर्थ्य और प्रस्तुतीकरण की व्यापकता और गहनता देखते ही बनती है। उदास और ठंडा मुल्क। अपने लोग, अपने रिश्ते याद आते हैं। तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'हाथ से फिसलती जमीन' के नरेन को घर की याद आती है। परिवार को भारत ले जाने के लिए उसका संघर्ष देखते ही बनता है। अपनी ब्रितानी पत्नी को परिवार की परिभाषा समझाते हुए उसे बताना पड़ता है कि भारत में माता-पिता ही नहीं, मेरे भाई-बहन भी हैं। बच्चे चाचा, बुआ से भी मिल लेंगे। उनकी कहानियों में बहुत-कुछ समानांतर चलने लगता है। नरेन जातिवाद की बेड़ियों में जकड़े अपने देश में अछूत होने की त्रासदी को झेलता है, तो इंग्लैंड में रंगभेद का शिकार होने लगता है। देश में अपने समाज में अलग-थलग था, यहाँ विदेश में घर में ही अलग-थलग पड़ गया। देश में घोषित रूप से अछूत था, तो यहाँ अघोषित रूप से बहिष्कृत। नरेन खुद को अपनी दुनिया में कैद कर लेता है। वैसे, हम जहाँ रहते हैं, जाने-अनजाने वहाँ की कई बातों को आत्मसात कर लेते हैं। बाहरी तौर-तरीकों में ही नहीं ढलते, हमारा गुण-स्वभाव भी बदलने लगता है। दिव्या माथुर की कहानी 'सफरनामा' में यूरोप निवासियों की सहज प्रवृत्ति, स्पष्टता, निर्मलता, सरलता और उदारता इंगलैंड से आई विजया के व्यवहार में परिलक्षित होती है। वहीं, सोच और व्यवहार की परस्पर खींचतान से कशमकश में रहने वाले अनूप वर्मा के जरिये आम हिंदुस्तानियों का दबा-ढका व्यवहार भी उजागर हुआ है।

मानवाधिकार, पेशेवर नैतिकता और तंत्र की शुचिता से प्रभावित होते तथा उदास व ठंडे मुल्क में अपने देश को याद करते, अनेक विरोधाभासों से टकराते, बदलती जीवन-शैली में सामंजस्य बैठाते, खुद को संरक्षित करने का प्रयास करते प्रवासी भारतीय विदेश में देश को लिये चलते हैं। यह सब बड़ी स्वाभाविकता से प्रवासी साहित्य में छलक-छलक जाता है। 'व्हेयर डू आई बिलॉन्ग' में नायिका रीना के ट्रेडिशनली इंडियन और टेक्निकली डेनिश होने से दोनों जगह 'ह्वेयर डू यू बिलॉन्ग' उसका पीछा करता है। जैसे-जैसे प्रवास बढ़ता जाता है, पीढ़ी-दर-पीढ़ी भारतीयता की पकड़ ढीली होती साफ नजर आती है। लेकिन इस आपबीती के परे भी बहुत कुछ है।

वह दिन गए जब त्वचा के रंग या बालों के रंग से किसी के देश निवासी का पता चल जाता था। अब दुनिया सिमट गई है। महाद्वीपों की दूरियाँ पट गई हैं। प्रेमचंद ने जिस प्रकार अपनी रचनाओं में सामाजिक और राजनीतिक सरोकारों से जुड़े कई ज्वलंत प्रश्नों को उठाया, क्या प्रवासी साहित्य में भी ऐसे मुद्दों की जगह है? अतीत में परस्पर निरंतर युद्धरत रहे यूरोप के देशों ने आज अपने निवासियों की सहूलियत के लिए वीजा मुक्त आवागमन, समान करेंसी, मैत्रीपूर्ण सीमाएँ जैसी कई व्यवस्थाओं को जमीनी हकीकत में उतारकर दिखा दिया है। उन देशों में मानवाधिकार, गरिमापूर्ण जीवन, नागरिकों का सम्मान, स्वास्थ्य, सुरक्षा जैसे मुद्दे बहुत महत्वपूर्ण हैं। नागरिक भी अपने सामाजिक और राष्ट्रीय कर्तव्यों के प्रति सजग हैं। सार्वजनिक संपत्ति की सुरक्षा नागरिकों की चिंता में है। ये नवयुग की ऐसी उद्घोषणाएँ हैं, जिनकी अनुगूँज प्रवासी साहित्य में प्रतिध्वनित होती है और हमें प्रेरित करती है। यह हूक भी उठती है कि काश! हमारे देश और देश के आस-पास भी ऐसा होता दिखाई दे। काश! हमारी सीमाओं में भी काँटेदार तारों की जगह फूलों की क्यारियाँ हों। प्रवासी साहित्य में इन बिंदुओं को संबोधित करने की बड़ी संभावना है।

# बालिका शिक्षा से दीप्त हो रही दुनिया

विगत वर्ष की सिविल सेवा परीक्षा द्वारा एक ही परिवार की दो बेटियाँ अखिल भारतीय सेवाओं के लिए चयनित हुईं। सोशल मीडिया में इस खबर को पढ़कर एक गरीब परिवार की छात्रा ने कहा, 'इन बहनों की इस सफलता से मैं भी अपना लक्ष्य पाने के लिए दुगुना उत्साहित हुई हूँ'।

आज लड़कियाँ विभिन्न चुनौतियों से जूझती हुई पढ़ाई-लिखाई कर अपनी जगह और पहचान बना रही हैं। सफल लड़कियों को देखकर दूसरी लड़कियाँ भी प्रेरणा ले रही हैं।

पूरी दुनिया की लड़कियों को शिक्षा सहित हर क्षेत्र में प्रोत्साहित करने और समानता दिलाने के लिए हर साल ग्यारह अक्तूबर को अंतरराष्ट्रीय बालिका दिवस मनाया जाता है। इसकी शुरुआत संयुक्त राष्ट्र द्वारा 2011 में की गई थी। इस दिन को मनाने का उद्देश्य लड़कियों के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करना है।

प्रसिद्ध लेखिका प्रभा खेतान की आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में एक पात्र कहती है, 'दुनिया में ऐसी कोई जगह नहीं है, जहाँ महिलाओं ने अपने आँसू न बहाए हों।' यही बात लड़कियों के संदर्भ में भी कही जा सकती है। लड़कियों के साथ भेदभाव और अन्याय, किसी-न-किसी स्तर पर, दुनिया में हर जगह होता है, किंतु एशिया, अफ्रीका और दक्षिण अमेरिका के अल्प विकसित और विकासशील देशों में यह अधिक प्रत्यक्ष और स्पष्ट दिखाई देता है। लड़कियों के साथ सबसे बड़ा भेदभाव है, उन्हें समुचित शिक्षा से वंचित रखना। स्कूलों में एडमिशन से लेकर उच्च शिक्षा तक किसी-न-किसी स्तर पर अधिकतर लड़कियाँ भेदभाव का शिकार होती हैं।

भारत की देखें तो यहाँ 2011 की जनगणना के अनुसार महिला साक्षरता की दर 65.46 प्रतिशत थी, जो पुरुष साक्षरता दर (82.14 प्रतिशत) से काफी कम है। आज भी प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के लिए दाखिला लेने वाली लड़कियों का अनुपात लड़कों से कम है। दाखिले के बाद पढ़ाई छोड़ने वाली लड़कियों की संख्या लड़कों से अधिक होती है। लेकिन पिछले कुछ समय से सामाजिक जागरूकता और विभिन्न सरकारी प्रोत्साहनों के कारण बालिका शिक्षा की दर में बढ़ोतरी हुई है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में 2023 में माध्यमिक विद्यालयों में लड़कियों के नामांकन की दर बढ़कर 78.75 प्रतिशत हो गई थी। इसके साथ ही, लड़कियों द्वारा बीच में ही पढ़ाई छोड़ने की दर में पिछले वर्षों की तुलना में गिरावट आई है। सरकारी आँकड़ों के अनुसार, 2021-22 के शैक्षणिक सत्र में 12.3 प्रतिशत लड़कियों ने माध्यमिक

**रमेश कुमार सिंह**

**शिक्षा :** बी.ए., बी.टी.सी.

**प्रकाशन :** विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में सिनेमा, संगीत तथा पुस्तक समीक्षा से जुड़े आलेख और बाल-साहित्य प्रकाशित, आकाशवाणी से वार्ताएँ, कहानियाँ, कविताएँ, नाटक और साक्षात्कार प्रसारित

**सम्मान :** हिंदी अकादमी, दिल्ली से कहानी के लिए पुरस्कृत

**संपर्क :** मोबाइल– 9810518717

ई-मेल : rkscript7@gmail.com

शिक्षा (कक्षा 9-10) के दौरान स्कूल छोड़ा, जबकि लड़कों की स्कूल ड्रॉपआउट दर 13 प्रतिशत रही।

बालिका शिक्षा के क्षेत्र में क्षेत्रीय असमानताएँ भी बहुत हैं। देश के कुछ राज्य, जैसे, पश्चिम बंगाल, केरल और तमिलनाडु, लड़कियों की शिक्षा में आगे हैं, तो कई राज्यों और इलाकों में इस दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है।

लड़कियों के प्रति व्यवहार के मामले में हमारा समाज विरोधाभासों से भरा है। कहीं लड़कियाँ लड़कों से आगे निकल रही हैं, तो कहीं वे सदियों पहले की सोच वाले समाज में जी और मर रही हैं। पुत्रमोह के कारण बेटे के जन्म पर उत्सव मनाया जाता है, लेकिन बेटी के जन्म पर घर-परिवार में उत्साहहीन माहौल रहता है। बेटी के जन्म पर भी खुशियाँ मनाई जाएँ, ऐसा हो सकता है, अगर लड़कियों को बोझ समझने की मानसिकता बदल जाए। यह मानसिकता तभी बदलेगी, जब लड़कियों को भी लड़कों के समान शिक्षा, रोजगार और व्यक्तित्व-निर्माण के अवसर मिल सकेंगे।

देखा जाता है कि लड़कियाँ अधिक एकाग्रतापूर्वक अध्ययन करती हैं। लड़कियों को कहीं-न-कहीं लड़कों से बेहतर प्रदर्शन करने की चुनौती भी होती है, इसलिए वे अधिक मेहनत और लगन से काम करती हैं। लड़कियाँ जब तक पढ़ाई जारी रख पाती हैं, प्रायः लड़कों से आगे रहती हैं। दसवीं और बारहवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षाओं के परिणाम आने पर अखबारों और समाचार चैनलों की सुर्खियाँ होती हैं–'लड़कियों ने फिर मारी बाजी'।

कहा जाता है कि बेटियों के पढ़ने से पिता के घर और ससुराल, दो घरों में शिक्षा की रोशनी होती है, अगली पीढ़ियाँ सँवरती हैं। लेकिन लाखों लड़कियाँ अभी भी विद्यालय में प्रवेश करने से वंचित हैं। उनका स्कूल में दाखिला करवा भी दिया गया, तो कई बार छोटे भाई-बहनों की देखरेख या अन्य पारिवारिक कारणों से पढ़ाई छुड़वा दी जाती है। उनसे घर के काम या मजदूरी कराई जाती है। उनका शोषण होता है। विरोध करने पर वे हिंसा का शिकार होती हैं। उनका वयस्क होने से पहले ही जबरदस्ती विवाह कर दिया जाता है। अनपढ़ और आर्थिक रूप से आश्रित लड़कियाँ ससुराल में अधिक सताई जाती हैं।

संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार, लड़कियाँ प्रतिदिन अपने समान आयु वाले लड़कों की तुलना में कई गुना अधिक घरेलू काम करती हैं। ये काम स्वैच्छिक नहीं होते और अकसर लड़कियों को पढ़ाई-लिखाई से वंचित रखकर कराए जाते हैं।

निर्धन परिवारों में लड़कियाँ खानपान, रहन-सहन, शिक्षा और चिकित्सा में अधिक भेदभाव और उपेक्षा का शिकार होती हैं। उन्हें भरपेट भोजन नहीं मिलता। बीमार होने पर दवाई नहीं मिलती। दूसरी तरफ, अपेक्षाकृत संपन्न परिवारों में भी लड़कियों की सेहत के प्रति उपेक्षा और लापरवाही देखी जाती है। इस कारण वे अपर्याप्त पोषण अथवा कुपोषण का शिकार हो जाती हैं। पिता ही नहीं, माताएँ भी बेटियों की अपेक्षा बेटों की सेहत के प्रति अधिक चिंतित रहती हैं। ऐसे में लड़कियों की शिक्षा ही नहीं, उनके स्वास्थ्य के प्रति भी मानसिकता बदलने की आवश्यकता है।

शिक्षा के उपरांत लड़कियों को आर्थिक स्वावलंबन के लिए रोजगार के विशेष अवसर मिलने चाहिए। कई सरकारी नौकरियों में उनके लिए आरक्षण के प्रावधान हैं। किंतु निजी क्षेत्र में कई जगह लड़कियों को लड़कों की तुलना में कम प्राथमिकता और कम सैलरी दी जाती है। चार्टर्ड अकाउंटेंसी का कोर्स करके नौकरी की तलाश कर रही सीमा ने बताया कि समान पद पर समान काम के लिए भी प्राइवेट कंपनियाँ किसी-न-किसी बहाने लड़कियों को लड़कों के बनिस्बत कम वेतन ऑफर करती हैं।

यह भी होता है कि लड़कियों को अपनी पसंद के विषय, कोर्स और शिक्षण संस्थान चुनने से रोका जाता है और माता-पिता की पसंद की पढ़ाई तथा परंपरागत शिक्षा उन पर थोप दी जाती है। परंपरागत शिक्षा अब कम रोजगारोन्मुख हैं। तकनीकी शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण द्वारा लड़कियों को रोजगार और स्वरोजगार के अधिक अवसर मिल सकते हैं, बल्कि कुछ हद तक मिल भी रहे हैं। इन दिनों स्टार्ट अप यानी व्यक्तिगत नवोन्मेषी उद्यम को प्रोत्साहित किया जा रहा है। स्टार्ट अप के लिए जो लड़कियाँ आगे आ रही हैं, वे इसके लिए अवसर, प्रशिक्षण और संसाधन उपलब्ध कराए जाने की हकदार हैं।

पौराणिक साहित्य में गार्गी, मैत्रेयी, घोषा, अपाला, लोपामुद्रा जैसी विदुषियों की चर्चा हुई है। ये कल्पित हों या वास्तविक, यह अनुमान तो लगाया जा सकता है कि प्राचीन भारत में बालिका शिक्षा की स्थिति अच्छी रही होगी। मध्य काल में सुरक्षा और इज्जत के नाम पर लड़कियों को सदियों तक पढ़ाई-लिखाई से वंचित

रखा गया। पर्दे और घरों में कैद लड़कियों के लिए यह शिक्षा का अंधायुग था। आधुनिक युग में देश की आजादी से लगभग सौ साल पहले सावित्रीबाई फुले (1831-1897) ने बालिका शिक्षा की नींव रखी। उन्होंने सन् 1848 में महाराष्ट्र के पुणे में पहले बालिका विद्यालय की स्थापना की। यह एक बड़ा ही साहसी और दूरदर्शी काम था, क्योंकि उस समय लड़कियों को स्कूल भेजना तो दूर, उन्हें घर में पढ़ाना-लिखाना भी समाज विरोधी और अधार्मिक काम समझा जाता था।

सावित्रीबाई फुले की सोच अपने युग से बहुत आगे की थी। उन्होंने बालिका शिक्षा के विरुद्ध खड़े रूढ़िवादी लोगों का साहस से सामना किया। वे घर-घर जातीं और लड़कियों को स्कूल भेजने के लिए प्रेरित करतीं। बहुत-से लोग इस बात का विरोध करते, लेकिन कुछ लोग समर्थन भी करते। वे अपनी छात्राओं को पढ़ाई जारी रखने के लिए प्रेरित करतीं।

सावित्रीबाई ने कहा कि लड़कियों से घर के काम और चौका-बर्तन कराने के बजाय उन्हें पढ़ाना-लिखाना जरूरी है। उन्होंने लिखा कि विद्या ही सच्चा धन है और जिसके पास ज्ञान का भंडार है, वास्तव में वही धनी होता है।

सावित्रीबाई फुले का मानना था कि अशिक्षा बालिकाओं की सबसे बड़ी शत्रु है और उनका विश्वास था कि शिक्षा द्वारा ही उनके शोषण को रोका जा सकता है तथा प्रगति हो सकती है। उन्होंने लड़कियों को ज्ञान और शिक्षा की मदद से संघर्ष करने और आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा दी।

महात्मा गांधी के चंपारण सत्याग्रह (1917) के दौरान कस्तूरबा गांधी ने रचनात्मक कार्यों और स्त्री शिक्षा का जिम्मा लिया था। उन्होंने पाठशाला संचालित की। बालिकाओं को पढ़ना-लिखना सिखाया, उन्हें स्वास्थ्य और स्वच्छता के पाठ भी पढ़ाए। शिक्षा के क्षेत्र में कस्तूरबा गांधी के कार्यों को सराहना मिली। उनके सम्मान में देश में कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय योजना शुरू की गई है। इसमें वंचित समुदायों की बालिकाओं के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का प्रावधान है।

सावित्रीबाई फुले और कस्तूरबा गांधी के नाम पर देश में कई शिक्षण संस्थान हैं। शिक्षा के क्षेत्र में योगदान देने वाले लोगों के नाम पर शैक्षणिक संस्थानों का नामकरण उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन की एक स्वस्थ परंपरा मानी जा सकती है।

समस्त समाज सुधारकों और प्रबुद्ध साहित्यकारों ने बालिका शिक्षा का सदैव समर्थन किया है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1914 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित अपने निबंध 'स्त्री शिक्षा के विरोधी कुतर्कों का खंडन' में लड़कियों को पढ़ाने के पक्ष में जोरदार तर्क प्रस्तुत किए। महान कवयित्री महादेवी वर्मा मानती थीं कि शिक्षा स्त्री सशक्तीकरण का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। प्रख्यात लेखिका मन्नू भंडारी ने अपनी आत्मकथा 'एक कहानी यह भी' में लिखा है कि पढ़ाई के दिनों में उनके पिता जी उन्हें रसोई से दूर रखना चाहते थे और उनके हिसाब से वहाँ रहना अपनी क्षमता और प्रतिभा को भट्टी में झोंकना था।

लड़कियों को शिक्षित करने और उन्हें आत्मनिर्भर बनाने में परिवार की अहम भूमिका होती है। लेकिन कुछ माँ-बाप मानते हैं कि खानदान का वारिस लड़का होगा, अतः उसे ही पढ़ाया जाना चाहिए। यहाँ 'लड़कियाँ चूल्हा फूँकें, लड़के पढ़ाई करें' वाली मानसिकता दिखती है। दूसरी तरफ, कई लोग सिर्फ दिखावा करते हैं कि वे बेटा और बेटी में कोई अंतर नहीं समझते। वे बेटियों को पहनावे और पढ़ाई की छूट तो देते हैं, लेकिन अपनी इच्छाएँ भी उन पर थोपते रहते हैं। बेहतर होगा कि दिखावे के बजाय बेटियों के साथ हर स्तर पर समता और पूरी ममता का व्यवहार किया जाए।

दिल्ली नगर निगम के स्कूलों में अभिभावक-शिक्षक मीटिंग में पूछताछ करने पर कई अभिभावक बताते हैं कि उनका बेटा प्राइवेट स्कूल में पढ़ रहा है, जहाँ वे अपनी आमदनी के हिसाब से अच्छी-खासी फीस चुकाते हैं, और बेटी सरकारी स्कूल में पढ़ रही है, जहाँ कोई फीस नहीं देनी पड़ती। कई अभिभावक कहते हैं कि लड़कियों की पढ़ाई में खर्च करने से क्या फायदा, आखिर उन्हें दूसरे के घर जाना है। यह भी कि लड़कियाँ ज्यादा पढ़ गईं, तो उनका विवाह और ज्यादा पढ़े-लिखे लड़के से करना पड़ेगा और ज्यादा दहेज देना पड़ेगा। लड़कियों की पढ़ाई में खर्च और फिर दहेज की दोहरी मार कौन सहे!

> **अगर मानव-सभ्यता को दुगुनी तेजी से आगे बढ़ाना है, तो सभी लड़कियों को शिक्षित करना होगा। बालिकाओं को शिक्षा से वंचित करना संविधान प्रदत्त उनके मौलिक अधिकार का हनन है। इस अधिकार के प्रति सबको जागरूक करने और सतत जागरूक रहने की जरूरत है। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसे अभियान इस जागरूकता के प्रमाण भी हैं और परिणाम भी।**

दहेज की कुप्रथा, लड़कियों की शादी ही नहीं, उनकी पढ़ाई में भी रुकावट बनकर खड़ी हो जाती है। लेकिन अच्छी बात यह है कि इन समस्याओं के बावजूद समाज में लड़कियों की पढ़ाई के प्रति सकारात्मक सोच आ रही है। लोग मान रहे हैं कि अच्छी शिक्षा लड़कियों की शादी में बाधक नहीं, साधक बनेगी।

अब तो लड़कियाँ कई क्षेत्रों में लड़कों से बेहतर प्रदर्शन करने लगी हैं। वे खेलकूद, विज्ञान, तकनीक, प्रशासन, सैन्य सेवा, सभी में निरंतर आगे बढ़ रही हैं। ज्यादातर लोग शिक्षा द्वारा मिली लड़कियों की सफलता से उत्साहित हैं, और अपनी बेटियों को भी प्रोत्साहित कर रहे हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों में हासिल की गई लड़कियों की उपलब्धियों का प्रचार-प्रसार हो रहा है और स्थितियाँ धीरे-धीरे उनके अनुकूल हो रही हैं।

अगर मानव-सभ्यता को दुगुनी तेजी से आगे बढ़ाना है, तो सभी लड़कियों को शिक्षित करना होगा। बालिकाओं को शिक्षा से वंचित करना संविधान प्रदत्त उनके मौलिक अधिकार का हनन है। इस अधिकार के प्रति सबको जागरूक करने और सतत जागरूक रहने की जरूरत है। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसे अभियान इस जागरूकता के प्रमाण भी हैं और परिणाम भी।

बीते वर्षों की तुलना में देखें तो लड़कियों के जीवन में आए परिवर्तन साफ दिख रहे हैं। आज लड़कियाँ अपनी मेहनत और मेधा से जीवन के हर क्षेत्र में कामयाबी के मिसाल कायम कर रही हैं और सबको संदेश दे रही हैं कि ऐसा वातावरण बनाया जाए, जिसमें बेटियाँ अपनी संपूर्ण क्षमता का उपयोग कर सकें। सभी लोग मिलकर प्रयास करेंगे तभी लड़कियों की शिक्षित, सुरक्षित और स्वावलंबी दुनिया का सपना साकार हो सकेगा।

अब सब मान रहे हैं कि लड़कियों को शिक्षित करना उनके भावी जीवन के आधार को मजबूत करना है। शिक्षा द्वारा उन्हें सक्षम बनाना, उन्हें दुनिया को बदलने में सक्षम बनाना है। आज की सशक्त बालिका ही कल की सशक्त स्त्री होगी। बालिका शिक्षा में निवेश समृद्ध भविष्य के लिए निवेश करने जैसा है। यह आधी आबादी को, पूरी दुनिया की समस्याओं को हल करने में सहयोगी बनाना है। मानवता को स्त्री शक्ति का पूरा लाभ मिले, इसके लिए बालिकाओं को शिक्षित करना आवश्यक है।

# आओ, भारतीय भाषाएँ सीखें

| हिंदी | संस्कृत | पंजाबी | उर्दू | कश्मीरी | सिंधी | मराठी | कोंकणी | गुजराती | नेपाली | बांग्ला |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **जगत** | **जगत्** | **जगत** | **आलम, दुनिया** | **ज़गथ, समसार, दुनियाह** | **जगतु, संसारु** | **जग, विश्व** | **संवसार** | **जगत** | **जगत, विश्व, संसार** | **जगत, संसार, विश्व** |
| जन्म-दिन | जन्मदिनम् | जनमदिन | यौमे-पैदाइश | वाहेरवोद, ज़ादोह | जनम जो डीहुं, जनम-दिन | वाढदिवस | वाउ दिवस | जन्मदिन | जन्मदिन, जन्म दिवस | जन्मदिन |
| जन्म-भूमि | जन्मभूमिः | जम्मण-भों, जनम-भूमी | मौलिद, जाए पैदाइश | ज़्यन जाय मादरि वतन | जनम भूमि | मातृभूमि | मातृभूंय मायभूंय | जन्मभूमि | जन्मभूमि, जन्मस्थान, जन्मथलो | जन्मभूमि |
| जनता | प्रजा | जनता | अवाम | जनता, अवाम, लूख | जनता, रिआया | जनता | जनता | जनता | जनता, प्रजा, रैती | जनता, जन-साधारण |
| जनतंत्र | जनतंत्रम् | लोकतंतर, जनतंतर | जुम्हूरियत | जोम्हूर्ययथ | रैयती राजु, जनतंत्रु, हकूमत प्रजातंत्रु, जम्हूरियत | लोकशाही | लोकशाय | प्रजासत्ताक, राज्यतंत्र, रिपब्लिक | लोकतन्त्र, प्रजातन्त्र | गणतंत्र, जनतंत्र |
| जनजाति | वन्यजातिः | जनजाती | क़बीला | कबील | क़बीलो, जनजाती | वन्य जमाती | जनजाती | आदिवासी | जनजाति | आदिबासी |
| जनगणना | जनगणना | मरदम-शुमारी | मर्दुमशुमारी | मोरदुम शुमॉरी | आदमशुमारी | खानेसुतारीः सेन्सस | जनगणना | वसति (ती) गणतरी | जनगणना | लोकगणना, आदम-शुमारि |
| जमाना | कालः, युगम् | ज़माना | ज़माना, वक़्त | ज़मान | ज़मानो | काळ, समय, जग | काळ | जमानो | समय, काल, जमाना | जुग, काल, समय |
| जमींदार | भूपतिः | जिमिंदार | ज़मींदार | ज़मीनदार | ज़मींदारु | जमीनदार | जमीनदार, भाटकार, मालक | जमीनदार, मालिक | जमिनदार | जमिदार, प्रभू |
| जयंती | जन्मोत्सवः, जयन्ती | जयंती, वरेहगंढ | जश्ने-मीलाद | जयंतर | जयंती, जश्ने सालगिरह | जयंती | जल्म-दिवस, जयंती | जयंती | जयन्ती, जयन्तिका | जन्मोत्सब |
| जरूर | अवश्यम् | जरूर | ज़रूर | ज़रूर | ज़रूर | अवश्य, जरूर | ज़रूर | जरूर | अवश्य, पक्का, निश्चय | अबश्य निश्चय |
| जंग | युद्धम् | जंग | जँग | जंग | जंगि | युद्ध, लढाई | झूज, युद्ध | युद्ध | जुद्ध, युद्ध, लडाई | युद्ध |
| जंगल | वनम् | जंगल | जंगल | जंगल, वन | झंगलु | अरण्य, वन, जंगल | रान | वन, जंगल | जङ्गल, वन | जंगल, बन |

| असमिया | मणिपुरी | ओड़िआ | तेलुगू | तमिल | मलयालम | कन्नड़ | डोगरी | संताली | मैथिली | बोडो |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| **जगत, संसार, बिश्व** | **संसार, ताइबङ्, मालेम्** | **जगत, संसार, विश्व** | **जगत्तु, प्रपंचमु** | **उलगम्** | **लोकम्** | **प्रपंच, विश्व** | **संसार** | **जेगेत्, संसार** | **जगत्, जग** | **मुलुग** |
| जन्मदिन, जन्म-दिवस | मपोक नूमित् | जन्मदिन, जन्म-दिबस | जन्म-दिनमु, पुट्टिनरोजु | पिरंद नाळ् | पिरन्नाळ् | हुट्टिद-दिन जन्मदिन | जनम-दिन | जानाम माहा | जन्म-दिवस | जोनोम सान |
| जन्मभूमि, मातृभूमि | पोक्नफम्, इरमदम् (उ.पु) मरमदम् (अ.पु) नरमदम् (म.पु) | जन्मभूमि मातृभूमि | जन्मभूमि | पिरंद नाडु | जन्म भूमि | जन्मभूमि | जनम-भूम | जानाम दिशोम | जन्म-भूमि | जोनोम जायगा |
| जनता, प्रजा, राइज | प्रजा, | जनता, जन-साधारण | प्रजलु | पोदु मक्कळ् | जनत | प्रजे | जनता | जनता, परजा | जनता | सुबु, मानसि |
| गणतंत्र | प्रजाना मीहुत् खल्लगा वायेल थौदाबा गणतंत्र, जनतंत्र | साधारण-तंत्र, प्रजातंत्र, लोकतंत्र | प्रजा-प्रभुत्वमु | कुडि आट्चि | प्रजा-यत्तभरणम् जनाधिपत्यम् | प्रजातंत्र | लोकतैंतर | गनतंत्र, लोकतंत्र | जनतंत्र | सुबुंदारा, गनतन्त्र |
| जनजाति आदिबासी | आदिवासी हाओ, चीङ्मी | गिरिजन, जंगली, आदिबासी, जनजाति | आदिम-जाति | पळंकुडि मक्कळ् | गोत्रजाति | बुडकटटु | जनजाति, कबीला | आदिवासी | जनजाति | जनजाति, थागिबि |
| जनगणना | मीमोक् थिबा | सरकारी-लोकसंख्या-निरूपण, जनगणना जनसुमारि | जनाभा-लेक्क | मक्कळ्, तोगै-कणक्कु | जनसंख्य ऐट्टुक्कल, कानेषुमारि | जनगणने | मरदम-शमारी | जनगनना सेंसास | जनगणना | सुबुं सानखो/ साननाय, सुबुं सुमारि |
| काल, समय | मतम | काल, समय, जुग | कालमु | कालम् | कालम् | काल, समय | जमान्ना, समां | जुग, अक्त | जमाना, समय, युग, काल | सम, मुगा |
| जमींदार, माटिर-गराकी | जमीन्दार, जामिन मपू | जमिदार | जमींदारु | जमींदार, निल-क्किळर् | जमींदार्, भूस्वामि जन्मि | जमीनुदार | जिमींदार | जुमिदार | जमिनदार | जमिदार, हा बिगुमा |
| जन्मोत्सव | मपोक नुमित्ता पाङ्थोकपा | जन्मदिन, जन्मोत्सब | जयंति | पिरंद नाळ् विळा | जन्म दिनोत्सवम् पिरन्नाळ् | जयंति | बरस गंढ | जानाम जयंती | जयन्ती | फोर्बो, फालिथाइ |
| अवश्ये, निश्चय | सोइदवा, सोइद-नमक | जरूर, अबश्य, निश्चय, निश्चित | तप्पकुंडा | अवसियम्, कट्टायम् | तीर्च्चयायुम् | खंडित, अगत्य | जरूर | जारूड़ एकालते | जरूर, अवश्य | थारैनो, नंगुबैयै |
| युद्ध | लाल | जुद्ध, समर, संग्राम | युद्धमु, पोराटमु | युत्तम् पोर् | युद्धम् | युद्ध | लाभ | जुद्ध | युद्ध | दावहा |
| हाबि, जंघल | ऊमङ्, जंगल | जंगल, बन, बण, अरण्य | अडवि | काडु | काट्टु | काडु | जाड़ | बिर | जङ्गल, वन | हाग्रामा, अरनबारि |

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा कोश से साभार)

# कार्टून और चित्रकथाएँ बच्चों की कल्पना को उड़ान देते हैं

बच्चों के कल्पनालोक में सहज-सरलता के साथ-साथ अतिरंजित, चामत्कारिक भाव का विशेष महत्व है। इन्हीं भावों का सम्मिश्रण और बहुलता बच्चों को आनंद के अतिरेक तक पहुँचाती है। अनोखेपन का आकर्षण, जिज्ञासा व आश्चर्य ही जादू और जोकर के करतबों का तिलिस्म खड़ा करता है, जिसमें बच्चे-बूढ़े सब खो जाते हैं। संभवतः, इसी तिलिस्म के आकर्षण ने कार्टून व कॉमिक पात्रों के सृजन की आधारशिला रखी।

चित्रकला एक ऐसी विधा है, जो बच्चों की कल्पनाशीलता को पंख लगाती है, उन्हें साकार करती है। रंग और रेखाओं का जादू मनुष्य को शैशवकाल से ही अपने मोहपाश में बाँध लेता है। आमतौर पर मनुष्य अपने बचपन में तुकबंदी करता है। उसी तरह, प्रत्येक बचपन से चित्रकार भी होता है। रेखाएँ टेढ़ी हों या सीधी, आकृति का कैसा भी स्वरूप बने वह अपने मनोलोक की कल्पना को बाल्यकाल से ही आकार देने लगता है। यही जन्मना लगाव तथा उभरता समाजिक बोध उसे कार्टून और चित्रकथाओं से जोड़ता है। इस लोक में निर्मल हास्य का आनंद है। विचित्रता है, नटखटपन है, हंगामा है और रहस्य-रोमांच की अनदेखी दुनिया भी। बच्चों को छुटपन में ही सदाचार की सीख देने का प्रचलन आदिकाल से रहा है। व्यावहारिक ज्ञान के साथ-साथ जीवन की नीतिगत शिक्षा के लिए माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी आदि बुजुर्ग बच्चों को लोककथाएँ सुनाते थे, जिनमें सत्य, अहिंसा, आदर, सेवा-भाव, लोभ का त्याग, बुराई पर हमेशा अच्छाई की जीत आदि नीतियों का बखान प्रमुख रूप से होता था। प्रतिश्रुति की यह प्रथा बहुत प्राचीन और परंपरागत है। वर्तमान हाईटेक परिदृश्य में भी ये उपयोगी हैं और उसका चलन अब भी है।

इस माध्यम को अधिक समर्थ बनाने में पंचतंत्र की कथाओं का महती योगदान है। इन कहानियों के सदाचारी वीर नायक-नायिका आदि पात्रों व घटनाओं की परिकल्पना बच्चे अपने मनोलोक में स्वयं कर लिया करते थे। वे उनके हीरो बन जाते थे। प्रतिश्रुति कथाओं से आगे आकर बच्चों की उस परिकल्पना को चित्रकारों-लेखकों ने कार्टून तथा चित्रकथाओं के माध्यम से साकार किया तथा उस परंपरा के उत्तरदायित्व को बखूबी निभाया। चित्र या छवियाँ बच्चों की पठन-प्रक्रिया में सेतु का काम करते हैं, उसकी एकरसता को तोड़ते हैं। पाठ तथा चित्र का तादात्म्य बनाते हुए बच्चा रसास्वादन करता है। उसकी बोधगम्यता सुलभ हो जाती है। जब खिलौने

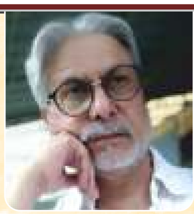

**राज कमल**

**जन्म :** आगरा, उत्तर प्रदेश

**शिक्षा :** हिंदी साहित्य में एम.ए. तथा ललित कला में बी.एफ.ए.

**संप्रति :** बतौर चित्रकार 'लिंक वीकली', 'पैट्रियट' तथा 'टाइम्स ऑफ इंडिया' प्रकाशन समूह में कार्यानुभव, वर्तमान में स्वतंत्र चित्रकार एवं लेखक के रूप में कार्यरत

**प्रकाशन :** देश-विदेश की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में सैकड़ों कहानियाँ प्रकाशित। कुछ कहानियाँ उर्दू तथा ओड़िआ में भी अनूदित। चार कहानी-संग्रह व तीन उपन्यास प्रकाशित

**संपर्क :** मोबाइल– 9811616298
ई-मेल– saarangkraj@gmail.com

से आगे की दुनिया में बच्चों के लिए चित्र अधिक आकर्षक तथा सरस लगने लगे तो उनके मनोविज्ञान व व्यावहारिकता को ध्यान में रखते हुए चित्रों तथा कथाओं का संयोजन किया गया। वहीं से चित्रों के सरलीकरण तथा निहितार्थ की अभिव्यक्ति ने कार्टून की अवधारणा को जन्म दिया और नीतिकथाओं की परंपरा ने चित्रकथाओं का जामा पहन लिया।

सर्वप्रथम कॉमिक पात्रों की रचना बीसवीं सदी के तीसरे दशक में अमेरिका के वॉल्ट डिजनी तथा उसके मित्र ने की थी। उसके कुछ कॉमिक चरित्रों, जैसे 'मिक्की माउस, 'डोनाल्ड डक, 'अंकल क्रूज, 'टॉम एंड जैरी' आदि ने बच्चों की दुनिया में खूब धूम मचाई। अन्य

विदेशी चित्रकारों के 'सुपरमैन, 'फ्लैशगार्डन, 'मैडिक्स, 'डेनिस द मैनिस, ली फॉक का 'फैंटम' तथा डेविड का 'गारफील्ड' भी बच्चे-बूढ़ों का चहेता बना। कालांतर में इन सभी चरित्रों पर फिल्में भी बनीं, जो विशेष रूप से कामयाब रहीं। पश्चिमी जगत के प्रिंट मीडिया में कार्टून रचना की उपस्थिति उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही दर्ज हो चुकी थी। भारत में कार्टून का दौर बहुत बाद में प्रारंभ हुआ, जिसका श्रेय केरल में जन्मे शंकर पिल्लई को दिया जाता है। संभवतः, उन्हें देश का पहला व्यंग्य-चित्रकार कहना उचित होगा। 1943 में आर.के. नारायण का कथा संग्रह 'मालगुड़ी डेज' प्रकाशित हुआ, जिसकी कथाओं का चित्रांकन उनके छोटे भाई विख्यात व्यंग्य-चित्रकार आर.के. लक्ष्मण ने किया। कार्टून जगत का जो आधार शंकर ने बनाया था, उस पर आर.के. लक्ष्मण ने ऐतिहासिक

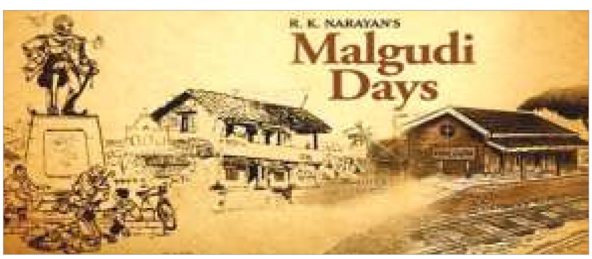


बुलंद इमारत खड़ी कर दी। उनका रचित 'कॉमन मैन' पात्र देश का प्रतिनिधित्व करने लगा। शंकर ने 1949 में 'शंकर इंटरनेशनल चिल्ड्रन कंपटीशन' तथा 1952 में 'स्पॉट पेंटिंग कंपटीशन' का आरंभ किया। इससे बच्चों की नैसर्गिक अभिव्यक्ति को स्वतंत्रता तथा नया आयाम मिला। उन्होंने 1957 में 'चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट' की स्थापना की, जो कथा और चित्रों के साझेपन का इतिहास बन गया।

वस्तुतः, सही अर्थों में चित्र कथाओं का इतिहास 1967 में अनंत पई के संपादन तथा इंडिया बुक हाउस से 'अमर चित्र कथा' के प्रकाशन से आरंभ हुआ। इन चित्रकथाओं में पौराणिक, महाकाव्य, ऐतिहासिक तथा लोक कथाओं को विषय-वस्तु बनाया गया, जो पहले ही प्रतिश्रुति परंपरा द्वारा जनमानस से जुड़ी हुई थीं। चित्रों से सजी-धजी तथा सटीक पटकथा की बानगी से सधी इन चित्रकथाओं ने बच्चे ही नहीं, बड़ों का भी मन मोह लिया। उस समय की सर्वाधिक बिकने वाली कॉमिक बुक का खिताब भी अपने नाम किया। चित्रकथाओं की यह शृंखला लगभग चार सौ शीर्षकों में बीस भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होती थी।

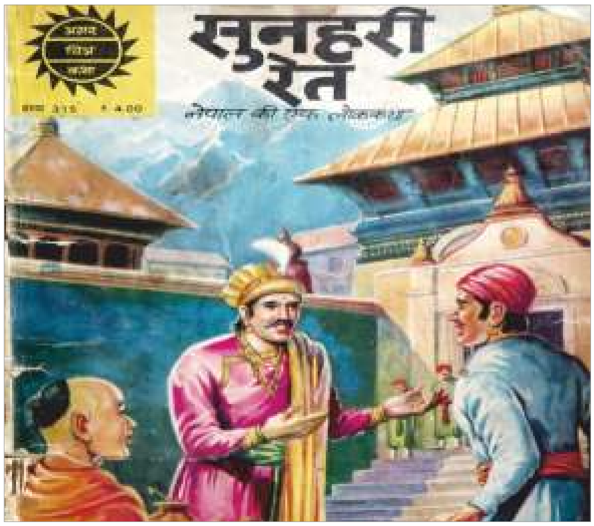


अब तक विभिन्न समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में कॉमिक स्ट्रिप का भी चलन आरंभ हो चुका था। इसके बाद, प्राण कुमार शर्मा उर्फ 'प्राण' का 'साबू' अवतरित हुआ। फैंटम, सुपरमैन जैसे विदेशी चरित्रों से प्रभावित होकर प्राण ने देशी हीरो 'चाचा चौधरी' की रचना की। उनके अन्य चर्चित पात्रों में—चन्नी चाची, श्रीमती जी, पिंकी और बबलू, रमन ने भी बच्चों का बहुत मनोरंजन किया। इसी शृंखला में

मोटू-पतलू, आबिद सुरती का 'ढब्बूजी' तथा शेहाब का 'छोटू-लंबू' भी हास्य-व्यंग्य का तहलका मचाने में बेहद कामयाब रहे।

इस विधा से बच्चों की संलग्नता तथा उसके प्रभावकारी कारणों पर बात करें तो यह स्पष्ट होता है कि यदि कार्टून सामाजिक संदर्भों, संबंधों या जीवन की विभिन्न स्थितियों पर चोट करके गुदगुदाता है या फिर विशुद्ध हास्यपूर्ण और कल्पनीय हो, तभी बच्चों को बहुत पसंद आता है, जिससे वे जीवन की सामाजिक वस्तुस्थितियों का अध्ययन भी करते हैं। समाचार-पत्र, पत्रिकाओं में अधिकतर कार्टून राजनीतिक परिवेश, स्थितियों व घटनाक्रमों से प्रेरित होते हैं। बच्चे उनके पंच या विषय पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी को अनुभव तथा कम उम्र के कारण आत्मसात नहीं कर पाते, क्योंकि चित्रकारों की अभिव्यक्ति के विविध स्तर होते हैं। बेशक, कुछ कार्टून पाठक की परिपक्वता का इम्तहान भी लेते हैं। यद्यपि, अब किशोरों की पाठ्य-पुस्तकों में विशुद्ध राजनीतिक कार्टूनों को स्थान दिया जा रहा है। कार्टून के संदर्भ तथा विषय को लेकर संसद में भी प्रश्न उठाये गए हैं।

बच्चों को सबसे अधिक प्रिय चित्रकथाएँ होती हैं। वैसे, आजकल उनके प्रकाशन और प्रसार में कमी देखी जा रही है। बीसवीं सदी के अंत तक भी बच्चे स्कूल में गर्मियों की छुट्टियों में कॉमिक्स किराए पर लाकर पढ़ा करते थे। बाद के लगभग पंद्रह-बीस वर्षों में टी.वी., वीडियो तथा मल्टीप्लेक्स सिनेमाघरों में एनीमेशन फिल्मों का चलन बहुत बढ़ा और वे बच्चों के मनोरंजन के लिए सहज उपलब्ध होने लगीं। निःसंदेह, चित्रकथाएँ बच्चों के मनोजगत को विकसित करने में सहायक बनी हैं। नीतिपरक शिक्षा व सामान्य ज्ञान के अतिरिक्त अपनी कला-संस्कृति, आवास, रहन-सहन, रीति-रिवाज व भाषागत विविधता का ज्ञानवर्धन भी वे बखूबी करती हैं। 'अमर चित्र कथा' की कॉमिक्स श्रृंखला ने तो कई पीढ़ियों को रामायण, महाभारत, बाइबल व अन्य पुराणों की विविध कथाओं व उनके पात्रों से परिचय कराया। ऐतिहासिक व आधुनिक काल के महापुरुषों की जीवन-लीला को जानने-समझने का अवसर दिया। इतनी सरल, सरस तथा सुगमता से अपनी सांस्कृतिक सूत्रों को बच्चों के मानस तक पहुँचाने का महती कार्य चित्रकथाओं ने किया है।

इस विधा की सार्थकता यह भी है कि इनकी पहुँच सर्वथा सकारात्मक होती है। सामाजिक सरोकार व सकारात्मकता को बच्चों के मनोजगत में रोपने का कार्य एक अच्छे सृजक की पहचान है। नकारात्मक सोच कला के लिए दीर्घजीवी हो भी नहीं सकती। आजकल केबल टी.वी. पर निजी चैनलों की भरमार है, जहाँ अनेक चैनल विशेष रूप से बच्चों के लिए प्रसारित होते हैं, जिनमें अनवरत कार्टून फिल्में दिखाई जाती हैं। व्यावसायिकता के दौर में उनकी गुणवत्ता पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जा रहा। कार्टून व चित्रकथा की पहली कसौटी उसका सुरुचिपूर्ण शिल्पगत चित्रात्मकता है। पहला आकर्षण दृष्टि का ही होता है, विषय व संदर्भ बाद में। इस समय चाइनीज कार्टूनों की सीरीज बच्चों में काफी लोकप्रिय हैं, जिनमें 'शिन चेन', 'निंजा हटोरी' आदि हैं। यद्यपि, चीन की चित्रकला अपनी परंपरा और शिल्प की दृष्टि से बहुत समृद्ध रही है। किंतु बाजारू प्रतियोगिता के चलते कार्टून फिल्मों में शिल्पगत गुणवत्ता नदारद है। कहानी व विषय-वस्तु की बात न भी करें तो भी पात्रों का नकारात्मक चित्रण बच्चों पर अच्छा प्रभाव नहीं डाल रहा। विशेषकर 'शिन चेन' सीरीज के मुख्य पात्र शिन चेन, जिसे माता-पिता के साथ भी बेहद उद्दंड, बदतमीज तथा अशोभनीय

व्यवहार करने वाला दिखाया गया, जिसके विरोध में मध्यवर्गीय अभिभावकों में व्यापक रोष भी देखने को मिला। माँ-बाप ने 'शिन चेन' कार्टून देखने पर बच्चों पर पाबंदी तक लगा दी थी। संभवतः, यह प्रतिक्रिया सीरीज के निर्माताओं तक पहुँची होगी, तभी बाद में उसमें कुछ सुधार के लक्षण देखे भी गए।

व्यंग्यचित्रों, चित्रकथाओं तथा कार्टून फिल्मों का माध्यम चाहे प्रिंट मीडिया हो अथवा टीवी-सिनेमा, वे आज भी बच्चों में बहुत लोकप्रिय हैं। वैसे, माता-पिता तथा बुजुर्ग भी इस रसास्वादन से वंचित नहीं रहना चाहते। यही कारण है, आज भी एनीमेटेड फिल्में—'हैप्पी फ्लीट, सुपरमैन, बैटमैन, मेडागास्कर, आइस एज, हैरी पॉटर आदि देखी जाती हैं। आजकल बच्चों के लिए 'यू-ट्यूब' चैनल पर भारतीय पौराणिक कथाओं, लोक कथाओं, पंचतंत्र तथा उपदेशात्मक कथाओं के चित्र व कार्टून फिल्में, अनेक पॉडकास्ट वीडियोज उपलब्ध हैं, जिन्हें हर वर्ग का दर्शक पसंद करता है।

*(चित्र साभार : 'गूगल' की वेबसाइट)*

# आधुनिक भारत के जनक राजा राममोहन

राजा राममोहन का स्थान आधुनिक भारत के इतिहास में उस महान सेतु के समान है, जिस पर चढ़कर भारत अपने असीम अतीत से निकलकर अज्ञात भविष्य की ओर अग्रसर होता है। राममोहन वस्तुतः भारतीय पुनर्जागरण के अग्रदूत और जनक थे। उन्होंने सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक एवं राजनैतिक पुनरुत्थान के लिए कठिन परिश्रम किया। उनके हृदय में प्राच्य दार्शनिक विचारधाराओं के लिए असीम और अगाध आस्था थी। वे आधुनिक विज्ञान तथा विवेकशीलता और मानवतावाद के सिद्धांतों से प्रभावित थे। उनकी धारणा थी

कि वेदांत दर्शन मानवीय तर्क शक्ति पर आधारित है। किसी भी स्थिति में मनुष्य को तब पवित्र ग्रंथों, शास्त्रों और विरासत में मिली परंपराओं से हट जाने में हिचकिचाना नहीं चाहिए, जब मानवीय तर्क शक्ति का वैसा तकाजा हो और वे परंपराएँ समाज के लिए हानिकारक सिद्ध हो रही हों। उन्होंने विचार रखा कि विवेक, बुद्धि का सहारा लेकर नए भारत के सर्वोच्चतम प्राच्य और पाश्चात्य विचारों को प्राप्त कर सँजोए रखना चाहिए। उन्होंने चाहा कि भारत पश्चिमी देशों से सीखे, मगर सीखने की यह क्रिया बौद्धिक और सृजनात्मक प्रक्रिया हो, जिसके द्वारा भारतीय संस्कृति और चिंतन में जान डाल दी जाए। उनका विश्वास था कि बुनियादी तौर पर सभी धर्म एक ही संदेश देते हैं कि उनके अनुयायी भाई-भाई हैं। इस तरह राममोहन ने भारतीयता और यूरोपीयता के सर्वोत्तम तत्वों का समावेश कर आधुनिक भारत के निर्माण का ठोस आधार तैयार किया और आधुनिक भारत के प्रथम महान नेता कहलाने के अधिकारी हुए।

राममोहन का जन्म 22 मई, 1772 ईसवी को बंगाल के हुगली जिले के राधानगर गाँव में हुआ था। उनके पिता रमाकांत राय थे और माता का नाम कंलिताखी देवी था। राममोहन बचपन से ही प्रतिभा के धनी थे। वे बहुभाषाविद् थे। शुरू से ही उनका स्वभाव विद्रोही था और वे चिंतनशील थे। बनारस जाकर उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया और पटना में उन्होंने फारसी एवं अरबी का ज्ञान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त, उन्होंने अंग्रेजी, फ्रेंच, लैटिन, ग्रीक एवं हिब्रू भाषा का भी अध्ययन किया। 1805 ईसवी में उन्होंने

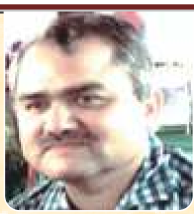

**संजय गोस्वामी**

**शिक्षा :** एम.एससी.

**संप्रति :** हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद द्वारा प्रकाशित 'वैज्ञानिक' पत्रिका के मुख्य व्यवस्थापक।

**प्रकाशन :** हिंदी विज्ञान के क्षेत्र में 1500 से अधिक लेख विभिन्न विज्ञान तथा हिंदी पत्रिकाओं में प्रकाशित

**सम्मान :** भारत गौरव सम्मान, विज्ञान परिषद द्वारा विज्ञान लेखन के लिए 'गोरख प्रसाद' सम्मान सहित लोकप्रिय विज्ञान लेखन के लिए कई सम्मान प्राप्त

**संपर्क :** मोबाइल– 8693863804

ईमेल– goswamisanjay80@yahoo.in

ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी कर ली। लेकिन उनका मन इस नौकरी में जमा नहीं।

1801 ईसवी में उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'एकेश्वरवादियों को उपहार' की रचना की, जिसमें उन्होंने अनेक देवी-देवताओं में विश्वास का विरोध किया और एकेश्वरवाद के पक्ष में वजनदार तर्क दिया। तत्कालीन भारतीय समाज का उन्होंने विवेचन किया और देखा कि हिंदू धर्म में तरह-तरह की कुरीतियाँ व्याप्त हो गई थीं और धर्म के मूल स्वरूप के प्रति ज्ञान धुँधला गया था। धर्म का स्वरूप विपरीत होने पर सभ्यता और संस्कृति में अवनति हुई थी। अतः मूल आवश्यकता थी, फव्वारे से उस बिंदु को साफ करना, जिसके कारण राष्ट्र का विकास अवरुद्ध हुआ था। धर्म सभ्यता का मूल मंत्र था और उसकी विकृतियों को दूर करके ही राष्ट्रीय उन्नति की जा सकती थी।

ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी के दौरान वे जॉन डिग्वी के सान्निध्य में आए और 1814 ईसवी में उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी की नौकरी छोड़ दी। उसके पश्चात वे कलकत्ता में रहने लगे, जहाँ उनका संपर्क 'यंग बंगाल' के कुछ सदस्यों से हुआ, जो पश्चिमी विचारों से प्रभावित थे। उन्होंने अपने विचारों के द्वारा उनको प्रभावित किया और 1815 में उन्हीं की सहायता से 'आत्मीय सभा' की स्थापना की। इस सभा के साप्ताहिक बैठक में एकेश्वरवाद तथा अन्य मौलिक धार्मिक सिद्धांतों पर चर्चा होती थी। 1816 में उन्होंने पाँच वेदांत ग्रंथों का अनुवाद प्रकाशित करना शुरू किया। उनका लक्ष्य यह सिद्ध करना था कि अद्वैतवाद की शिक्षा पर हिंदू धार्मिक ग्रंथ सदा से बल देते रहे हैं और मूर्ति पूजा और आडंबर हिंदू धार्मिक ग्रंथों के अनुकूल नहीं हैं। सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध उन्होंने 1818 ईसवी से ही अपना आंदोलन शुरू किया।

इसी वर्ष उन्होंने सदियों से चली आ रही अमानवीय सती प्रथा के विरुद्ध आंदोलन शुरू किया। सती प्रथा मौलिक रूप से अत्यंत प्राचीन थी, लेकिन 19वीं सदी के आरंभ में यह प्रथा बंगाल में अधिक प्रचलित हो गई। वे स्वयं कलकत्ता के श्मशानों में जाते और विधवाओं के रिश्तेदारों से उनके आत्मदाह के कार्यक्रम को त्याग देने के लिए समझाते। उन्होंने समान विचार वाले लोगों के समूह संगठित किए, जो इन कुरीतियों पर कड़ी निगाह रखें और विधवाओं को सती होने से रोकने के लिए हरसंभव कोशिश कर सकें। उन्होंने 1828 में कहा, "मुझे यह कहते हुए दुख होता है कि हिंदुओं की वर्तमान धर्म व्यवस्था ऐसी है कि जिससे उनके राजनीतिक हितों की पूर्ति नहीं हो सकती। उनके बीच असंख्य विभाजन और उपविभाजन को जन्म देने वाली जाति प्रथा ने उनको राजनीतिक भावना से पूरी तरह वंचित कर दिया है और अगणित धार्मिक संस्कारों तथा सिद्धिकरण के नियमों ने उनको कोई भी कठिन और साहसपूर्ण कार्य करने के लिए अयोग्य बना दिया है। मेरे विचार से यह आवश्यक है कि कम-से-कम उनके राजनीतिक और सामाजिक कल्याण के लिए उनके धर्म में कुछ परिवर्तन होने चाहिए।"

उन्होंने पुरोहितवाद की भर्त्सना की और कहा कि व्यक्तिगत विश्वासों और मान्यताओं तथा ईश्वर के बीच किसी प्रकार के पुरोहित की जरूरत नहीं है। उन्होंने देखा कि कुछ गिने-चुने लोगों को छोड़कर किसी को भी धर्मशास्त्रों का किसी प्रकार का ज्ञान नहीं था। पुरोहितों ने जनसाधारण को भुलावे में रखा था। यदि जनसाधारण धर्म शास्त्रों का सही ज्ञान प्राप्त करते तो पुरोहितों का महत्व घटता। इसी उद्‌देश्य से अपने लोगों को शिक्षित करने के लिए उन्होंने 'एकेश्वरवाद को उपहार' नामक पुस्तक की रचना की। उनके ही सत्प्रयासों से गवर्नर जनरल विलियम बेंटिक ने 1829 ईसवी में सती प्रथा जैसी इस अमानवीय प्रथा को अवैध घोषित किया। इसके खिलाफ राधाकांत देव के नेतृत्व में रूढ़िवादी हिंदुओं ने संसद में याचिका दी कि वह सती प्रथा पर पाबंदी लगाने संबंधी विलियम बेंटिक की कार्यवाही को मंजूरी न दे। राधाकांत देव ने राममोहन राय की भर्त्सना की और उन्हें विधर्मी घोषित किया। राममोहन राय ने प्रबुद्ध हिंदुओं की ओर से एक याचिका दी और सती प्रथा पर पाबंदी को बरकरार रखवाया।

वस्तुतः, राजा राममोहन ने विलियम बेंटिक की नीतियों का विरोध किया। राममोहन राय की जीवनी लेखिका मिस कॉलेट भी राममोहन राय के दृष्टिकोण को उचित ठहराती हैं, क्योंकि राममोहन वैधानिक दृष्टि से दबाव डालकर कार्य कराने के विरुद्ध थे। राममोहन स्त्रियों के अधिकारों के पक्के हिमायती थे। उन्होंने स्त्रियों की परवशता की निंदा की तथा इस प्रचलित विचार का विरोध किया कि स्त्रियाँ पुरुषों के बुद्धि या नैतिक दृष्टि से निकृष्ट हैं। उन्होंने बहुविवाह तथा विधवाओं की अवनत स्थिति की आलोचना की। महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए उन्होंने माँग की कि उन्हें विरासत और संपत्ति संबंधी अधिकार दिया जाए। उनकी मुलाकात एचएच विल्सन, मैसले, सर विलियम जोंस, सर हाइड ईस्ट और एडम जैसे विद्वानों से हुई और आधुनिक शिक्षा के महत्व को उन्होंने समझा।

प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान डेविड हेयर के साथ मिलकर 1817 ईसवी में उन्होंने कलकत्ता में प्रसिद्ध हिंदू कॉलेज की स्थापना की और डेविड हेयर की शिक्षा संबंधी परियोजनाओं का जोरदार समर्थन किया। इतिहासकार आर.सी. मजूमदार हिंदू कॉलेज की स्थापना में राममोहन का कोई हाथ नहीं मानते हैं। राममोहन ने कलकत्ता में 1817 में अपने खर्च से एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की, जिसमें अन्य विषयों के साथ यांत्रिकी और वाल्तेयर के दर्शन की शिक्षा दी जाती थी। उन्होंने

कहा कि भारत ने संस्कृत का काफी अध्ययन कर लिया है, अब उसे अंग्रेजी साहित्य की ओर भी झुकना चाहिए। अंग्रेजी शिक्षा के समर्थन में उन्होंने 1823 ईसवी में लार्ड एम्डहर को एक ज्ञापन दिया। निश्चित रूप से मैकाले की परियोजना के अग्रदूत राममोहन राय थे। उन्होंने 1825 ईसवी में एक वेदांत कॉलेज की स्थापना की, जिसमें भारतीय विद्या और पाश्चात्य सामाजिक तथा भौतिक विज्ञानों की पढ़ाई की सुविधा उपलब्ध थी। राममोहन ने यह विश्वास व्यक्त किया कि अंग्रेजी भाषा के अध्ययन के साथ-साथ भारत में क्षेत्रीय भाषाओं को भी प्रोत्साहित करना आवश्यक है। इसके माध्यम से भारत के लोग अपनी अभिव्यक्ति को एक ठोस आधार प्रदान कर सकते हैं। बाँग्ला साहित्य के विकास में उनका योगदान महत्वपूर्ण है।

वे बंगाल में बाँग्ला को बौद्धिक संपर्क का माध्यम बनाना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने एक बाँग्ला व्याकरण की रचना की। अपने अनुवादों, पुस्तिकाओं तथा पत्र-पत्रिकाओं के जरिए बाँग्ला भाषा की एक आधुनिक और सुरुचिपूर्ण शैली विकसित करने में उन्होंने सहायता की।

वे भारतीय पत्रकारिता के अग्रदूत थे। जनता के बीच वैज्ञानिक साहित्य और राजनैतिक ज्ञान के प्रचार, तात्कालिक दिलचस्पी की बातों पर जनमत तैयार करने और सरकार के सामने जनता की माँगों और शिकायतों को रखने के लिए उन्होंने पत्रिकाएँ बाँग्ला, फारसी, हिंदी और अंग्रेजी में निकाली। उन्होंने 'मिरातुल' अखबार का संपादन किया। फारसी में उन्होंने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'तोहफतउल-मुहिदीन' की रचना की। राममोहन भारत में एकेश्वरवाद का वेदांतिक संदेश देकर भिन्न-भिन्न समूहों में बँटे भारतीय समाज की एकता का आकार तैयार कर रहे थे। उन्होंने जाति प्रथा को बहुत बड़ा कोढ़ माना, क्योंकि जाति प्रथा लोगों को खंड-खंड में बाँटने में सहायक थी। अतः जाति प्रथा का उन्होंने दृढ़ता के साथ विरोध किया। उनका ख्याल था कि जाति प्रथा दोहरी कुरीति है। उसने देश में विभेद पैदा कर जनता को विभाजित किया है और देश को एकता की भावना से वंचित रखा है।

राममोहन देश के राजनीतिक प्रश्नों पर जन आंदोलन के प्रवर्तक भी थे। उन्होंने बंगाल के जमींदारों की उत्पीड़न कार्यवाहियों की निंदा की, क्योंकि इन जमींदारों ने किसानों को दयनीय स्थिति में पहुँचा दिया था। उन्होंने माँग की कि वास्तविक किसानों द्वारा दिए जाने वाले अधिकतम लगान को सदा के लिए एक निर्धारित कर देना चाहिए। उन्होंने लाखीराज जमीन पर लगान निर्धारित करने के प्रयासों का विरोध किया। उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक एकाधिकारों को समाप्त करने तथा भारतीय वस्त्रों से भारी निर्यात शुल्कों को हटाने की भी माँग की। उन्होंने सेवाओं के भारतीयकरण, कार्यपालिका और न्यायपालिका को एक-दूसरे से अलग करने, जूरी के जरिए मुकदमों की सुनवाई और भारतीयों और यूरोपवासियों के बीच न्यायिक समानता की माँग की। उन्होंने हर प्रकार के अन्याय, उत्पीड़न और जुल्म का विरोध किया। 1817 और 1820 के बीच उन्होंने रूढ़िवादी हिंदुओं के साथ वाद-विवाद किया।

1819 में उन्होंने मद्रास के विद्वान सुब्रह्मण्यम को मूर्ति पूजा के प्रश्न पर शास्त्रार्थ में पराजित किया। इससे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी और ईसाई मिशनरियों ने उनका साथ दिया। यह सब क्षणिक था। मिशनरियों का आचार तथा प्रचार मौलिक ईसाई धर्म से भिन्न था। 1820 ईसवी में राममोहन ने अपनी दूसरी पुस्तक 'प्रीसेप्ट्स ऑफ जीसस' का प्रकाशन करवाया। 1821 ईसवी में उन्होंने बैपटिस्ट मिशनरी के विलियम एडम को अद्वैतवाद का समर्थक बनाया। 1821 ईसवी में उन्होंने 'संवाद कौमुदी' नामक एक साप्ताहिक पत्रिका को

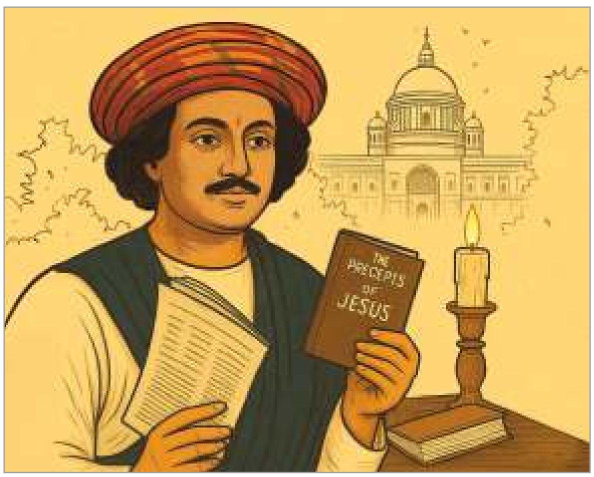

प्रकाशित किया। इसी वर्ष उन्होंने 'कलकत्ता यूनेटेरियम कमिटी' की स्थापना की। 1823 ईसवी में उन्होंने अपनी पुस्तक 'प्रीसेप्टस ऑफ जीसस' को लंदन से प्रकाशित करवाया।

> **ब्रह्म समाज एक ऐसी संस्था थी, जिसमें सबसे अधिक बल ईश्वर की उपासना पर था, लेकिन यह उपासना विश्वव्यापी ईश्वर की थी। धार्मिक अथवा आध्यात्मिक विचारों का मूल सिद्धांत था—एकेश्वरवाद, निराकार, निर्विकार और सर्वशक्तिमान ईश्वर की उपासना। वेदों और उपनिषदों के आधार पर उन्होंने निराकार ईश्वर के सिद्धांत को भी हिंदू धर्म का मुख्य आधार बनाया। सामूहिक पूजा की व्यवस्था करके उन्होंने अवश्य मुसलमानों अथवा ईसाइयों का अपने आपको ऋणी घोषित किया। उन्होंने हिंदू धर्म के अंदर रहकर उसे सुधारने का काम आरंभ किया। वे इतिहासकार विपिन चंद्र के शब्दों में, सिंह की तरह निडर थे और किसी उचित उद्देश्य का समर्थन करने में कभी हिचकिचाते नहीं थे। अपने पूरे जीवन उन्होंने व्यक्तिगत हानि और कठिनाई सहकर भी सामाजिक अन्याय और असमानता के खिलाफ संघर्ष किया।**

अपने धर्म संबंधी विचारों को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से राममोहन ने 20 अगस्त, 1828 ईसवी को ब्रह्म समाज की स्थापना की। ब्रह्म समाज एक ऐसी संस्था थी, जिसमें सबसे अधिक बल ईश्वर की उपासना पर था, लेकिन यह उपासना विश्वव्यापी ईश्वर की थी। धार्मिक अथवा आध्यात्मिक विचारों का मूल सिद्धांत था—एकेश्वरवाद, निराकार, निर्विकार और सर्वशक्तिमान ईश्वर की उपासना। वेदों और उपनिषदों के आधार पर उन्होंने निराकार ईश्वर के सिद्धांत को भी हिंदू धर्म का मुख्य आधार बनाया। सामूहिक पूजा की व्यवस्था करके उन्होंने अवश्य मुसलमानों अथवा ईसाइयों का अपने आपको ऋणी घोषित किया। उन्होंने हिंदू धर्म के अंदर रहकर उसे सुधारने का काम आरंभ किया। वे इतिहासकार विपिन चंद्र के शब्दों में, सिंह की तरह निडर थे और किसी उचित उद्देश्य का समर्थन करने में कभी हिचकिचाते नहीं थे। अपने पूरे जीवन उन्होंने व्यक्तिगत हानि और कठिनाई सहकर भी सामाजिक अन्याय और असमानता के खिलाफ संघर्ष किया। समाज सेवा के क्रम में बहुधा उनका अपने परिवार, धनी जमींदारों, शक्तिशाली धर्म प्रचारकों एवं उच्च विदेशी अधिकारियों के साथ टक्कर हो जाया करती थी। लेकिन वे हमेशा अडिग रहते थे। वे वैयक्तिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे।

1820 में जब फ्रांस में नेपल्स क्रांति हुई, तो उन्होंने बड़ा जश्न मनाया। लेकिन जब नेपल्स की क्रांति की असफलता हुई, तो वे बहुत दुखी हुए। राममोहन प्रेस एवं भाषण की स्वतंत्रता के दृढ़ समर्थक थे और उनके अनुसार प्रेस की आवाज को कोई भी सभ्य समाज दबा नहीं सकता है। जब ब्रिटिश सरकार द्वारा कुछ पत्रिकाओं पर पाबंदी लगा दी गई, तो उन्होंने इसका घोर विरोध किया। 1823 में उन्होंने हाईकोर्ट के समक्ष एक पिटिशन प्रस्तुत करके प्रेस की स्वतंत्रता की माँग की और गवर्नर जनरल द्वारा लागू की गई सेंसरशिप को तत्काल रोकने की माँग की। उन्होंने सरकार के प्रेस ऑर्डिनेंस का विरोध किया और अपने साथियों के साथ मिलकर प्रेस की स्वतंत्रता के लिए अपील की, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने उनकी अपील रद्द कर दी। अंत में, उन्होंने किंग इन काउंसिल के पास न्याय की माँग की, लेकिन वहाँ भी उन्हें सफलता नहीं मिली। क्षुब्ध होकर उन्होंने अपनी पत्रिका 'मिरातुल अखबार' का प्रकाशन बंद कर दिया, क्योंकि उन्हें शासकों की शर्त पर पत्रिका निकालना पसंद नहीं था। राममोहन भारत में न्यायिक समानता के समर्थक थे और इस संबंध में बहुत सारे सुझाव सरकार के पास भेजे। उन्होंने एक पुस्तिका लिखी, जिसका नाम था—'भारत में राजस्व और न्यायिक व्यवस्था'।

राममोहन ने 1827 में ब्रिटिश संहिता को सरल बनाने के लिए कंपनी सरकार के उस अधिनियम का विरोध किया, जिसके द्वारा भारत में जूरी द्वारा विचार की प्रथा चलायी गई थी। लेकिन यह निश्चित किया गया था कि ईसाई के मुकदमे का फैसला केवल ईसाई

ही करेंगे, लेकिन हिंदू और मुसलमानों के मुकदमे में ईसाइयों की ही प्रधानता होगी। इसके विरोध में उन्होंने 5 जून, 1829 को ब्रिटिश संसद के समक्ष एक आवेदन पत्र दिया। जब वे इंग्लैंड गए तो 1833 में चार्ल्स ग्रांट का जूरी बिल पास हुआ। उन्होंने जो आपत्तियाँ की थीं, उनका इस अधिनियम में ध्यान रखा गया। राममोहन मुगल सम्राट के मुकदमों के संदर्भ में 1830 में ही इंग्लैंड भी गए। वस्तुतः, 'राजा' की पदवी उन्हें मुगल सम्राट अकबर द्वितीय के द्वारा ही प्रदान की गई थी। राममोहन इंग्लैंड से फ्रांस गए, जहाँ वे बीमार पड़ गए। वे पुनः इंग्लैंड लौट आए और 20 सितंबर, 1833 को ब्रिस्टल में उनका देहांत हो गया। भारत की सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक एवं राजनैतिक पुनरुत्थान के क्षेत्र में महान योगदान के लिए वे आज भी याद किए जाते हैं।

# सांस्कृतिक-ऐतिहासिक धरोहर ओरछा

### वर्ष नव, हर्ष नव, जीवन उत्कर्ष नव

नव का स्वागत मानव स्वभाव है। इसी के चलते हम भी नव वर्ष के स्वागत में अति उत्साहित एवं आनंदित थे। क्यों न राम राजा का आशीर्वाद लें, नव वर्ष का स्वागत करें? और आनन-फानन में एक जनवरी, 2025, बुधवार को झाँसी से ओरछा जाने का

डॉ. यशोधरा भटनागर

**जन्म :** ग्वालियर, मध्यप्रदेश

**शिक्षा :** बी.ए. (हिंदी ऑनर्स) एम.ए. (हिंदी), साहित्य मेरिट स्कॉलर, ऑनरेरी डॉक्ट्रेट (विद्या वाचस्पति) उपाधि, पंडित दीनदयाल उपाध्याय हिंदी विद्यापीठ, वृंदावन

**प्रकाशन :** 'एलबम', 'खिड़की', 'एक मुट्ठी मिट्टी' (लघुकथा-संग्रह); 'तरंगिणी', 'रणवीर' एवं 'मुट्ठी में चाँद' (काव्य-संग्रह) आदि के साथ-साथ, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, कहानी, शोध-पत्र व यात्रा-वृत्तांत प्रकाशित

**संप्रति :** सेंट मेरीज़ कॉन्वेंट सी. से. स्कूल, देवास से हिंदी विभाग प्रमुख के रूप में सेवानिवृत्त होकर स्वतंत्र लेखन

**सम्मान :** इंडिया नेटबुक्स एवं बीपीए फाउंडेशन द्वारा इंडिया नेटबुक्स काव्य रत्न (2022) से सम्मानित, विद्योत्तमा फाउंडेशन नासिक द्वारा विद्योत्तमा साहित्य सारथी सम्मान (2024) सहित अनेक पुरस्कार एवं सम्मान से सम्मानित

**संपर्क :** मोबाइल– 9425306554

ईमेल– yashodharabhatnagar@gmail.com

कार्यक्रम तय हो गया। म.प्र.के निवाड़ी जिले में, बेतवा नदी के किनारे बसा ओरछा, जहाँ के राजा राम हैं और सभी नागरिक उनकी प्रजा। भगवान राम के प्रति अनन्य आस्था और विश्वास की हिलोरें बेतवा संग यहाँ के लोगों के हृदय में तरंगित होती हैं।

सुबह करीब दस बजे अपने छोटे-छोटे नाती-नातिन के साथ हम ओरछा के लिए रवाना हुए। हमारी सारथी हमारी बिटिया ही थी, कुशल कार चालक। बड़ा भरोसा है उसकी ड्राइविंग पर; साथ ही, उसे ड्राइविंग सीट पर बैठे देख मन गर्व से भर जाता है।

### तीन घंटे में तय किया तीस मिनट का सफर

हमने झाँसी क्रॉस किया कि ओरछा की सँकरी सड़क पर वाहनों की बढ़ती हुई संख्या देख मन परेशान हो गया। धीरे-धीरे कारें, ऑटो, ट्रैक्टरों की लंबी कतार सड़क पर रेंगने लगी और साथ ही पैदल चलने वाले लोगों की भी संख्या कम न थी। श्रद्धा और भक्ति का ऐसा प्रबल वेग कि कँपकँपाती ठंड भी लोगों को घर में न रोक सकी।

गाड़ियाँ रेंग रही थीं और हम मंथर गति से अपने गंतव्य की ओर बढ़ रहे थे। हमारी सारथी बिटिया बहुत शांति के साथ कार ड्राइव कर रही थी, पर हमारी नौ माह की नन्ही नातिन का धैर्य साथ छोड़ गया था। उसे सँभालना मेरे लिए भी कठिन होता जा रहा था। कितनी ही नर्सरी राइम्स और न जाने कितनी ही तत्क्षण रचित अपनी बाल कविताएँ सुना-सुनाकर, इतनी ठंड में भी मेरा गला सूख रहा था। तीस मिनट का रास्ता तय करने में पूरे तीन घंटे से अधिक का समय हो चुका था। अब तो मंदिर के पट बंद हो गए होंगे। चलो, शाम को पाँच बजे ही जाएँगे। 'ओरछा पैलेस' हमारा रिज़ॉर्ट आ गया था। वहाँ हमलोगों ने चेक इन किया और फ्रेश होकर लंच के लिए नीचे ही रेस्टोरेंट में पहुँच गए।

मैंने एक तिलकधारी से पूछा, "भाई राम राजा के दर्शन कर आए क्या?"

"हो! हम तो पैदलई चले गए। भीड़ बौत है। दो घंटा लाइन में लगे।" उन्होंने कहा।

हमारी हिम्मत जबाब दे रही थी। इतनी दूर पैदल जाना अपने बस की बात नहीं और ट्रैफिक का आलम यह कि गाड़ियों के लिए सड़क पर जगह नहीं।

"कोई बात नहीं। सब होटल में ही मजे करेंगे।" खुद को समझाते हुए बच्चों को समझाया।

संध्या की लालिमा रात्रि के गहन अंधकार में बदल गई। खिड़की से बाहर मेन रोड की ओर देखा—सड़क पर गाड़ियों का प्रकाश दीपावली की चलायमान दीपमालिकाओं सम लग रहा था।

## ओरछा की हर धड़कन में राम विराजित हैं

"राम राजा हमें कब दर्शन दोगे?" गहरी साँस ले सब कुछ राम राजा पर छोड़ दिया। नगर के छोटे-से द्वार में से निकल ओरछा नगर में प्रवेश पाना आज तो टेढ़ी खीर थी, इसीलिए पूरा दिन यूँ ही निकल गया। अगले दिन भी ट्रैफिक की बुरी स्थिति देखकर हमने टैक्सी हायर कर ली। होटल से चेक आउट करके करीब ग्यारह बजे हम राम राजा के दर्शन के लिए निकल गए। ड्राइवर केवट भाई से ओरछा के बारे में जानकारी एकत्रित करते रहे।

यह जानकर हृदय हर्षित हुआ कि ओरछा की हर धड़कन में राम विराजित हैं। अयोध्या से ओरछा की दूरी लगभग साढ़े चार सौ किलोमीटर है, लेकिन इन दोनों ही स्थानों में छह सौ बरस पुराना गहरा संबंध है। हिंदू हों या मुस्लिम, राम राजा दोनों के ही आराध्य हैं।

कहा जाता है कि 16वीं शताब्दी में ओरछा के बुंदेला शासक मधुकर शाह की महारानी कुंवरि गणेश अयोध्या से रामलला को ओरछा ले आई थीं। राजा मधुकर शाह भगवान कृष्ण के परम भक्त थे, जबकि उनकी पत्नी महारानी कुंवरि गणेश भगवान राम की भक्त थीं। इसी कारण दोनों के मध्य अकसर विवाद भी होता था। एक बार मधुकर शाह ने रानी के सामने वृंदावन जाने का प्रस्ताव रखा, पर रानी ने उनके इस प्रस्ताव को विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया और अयोध्या जाने की जिद करने लगी। इसके बाद राजा ने रानी से कहा कि अगर तुम्हारे राम असली हैं तो उन्हें अयोध्या से ओरछा लाकर दिखाओ।

## प्रभु ने रानी के सामने रखी थी तीन शर्तें

जनश्रुति है कि राजा मधुकर शाह की चुनौती पर रानी कुंवरि गणेश अयोध्या के लिए रवाना हो गईं और अयोध्या पहुँचकर उन्होंने इक्कीस दिनों तक तपस्या की। इसके बाद भी जब उनके प्रिय भगवान राम प्रकट नहीं हुए तो उन्होंने सरयू नदी में छलाँग लगा दी। ऐसा कहा जाता है कि महारानी की भक्ति देखकर भगवान राम नदी के जल में ही उनकी गोद में आ गए। उस समय महारानी ने राम से अयोध्या से ओरछा चलने का निवेदन किया। रानी कुंवरि गणेश के सामने प्रभु राम ने तीन शर्तें रखीं—

पहली शर्त—"मैं यहाँ से जाकर जिस जगह बैठ जाऊँगा, वहाँ से नहीं उठूँगा।"

दूसरी शर्त—"ओरछा के राजा के रूप में विराजित होने के बाद किसी और के पास सत्ता नहीं होगी।"

तीसरी शर्त भगवान राम ने रानी के सामने रखी कि वो खुद बाल रूप में पैदल एक विशेष पुण्य नक्षत्र में साधु संतों के साथ जाएँगे।

प्रभु राम की इन तीनों शर्तों को रानी ने फौरन स्वीकार कर लिया।

इसके बाद राजा राम ओरछा जाकर वहाँ विराजमान हो गए। तब से अब तक ओरछा में भगवान राम राजा के रूप में पूजे जाते हैं।

ट्रैफिक से जूझते हम लगभग बीस-पच्चीस मिनट में राम राजा के मंदिर में पहुँचे। यहाँ भी दर्शन के लिए बहुत भीड़ थी। जूते उतारकर हम प्रवेश द्वार की ओर बढ़ रहे थे कि फोटोग्राफर भाई ने हमें आज के जमाने के डिजिटलिया फोटो खिंचवाने के लिए रोक लिया। इधर क्लिक, उधर फोटो हाथ में। हम भी उनकी मनुहार के सामने नतमस्तक हो गए और परिवार सहित एक, दो, तीन—पूरे चार फोटो खिंचवाकर मंदिर में प्रविष्ट हुए। लंबी कतार में खड़े हम भक्ति भाव से राम नाम रटते, पीछे से धक्के की लहर के साथ आगे बढ़ रहे थे। करीब पौन घंटे बाद राम राजा के दरबार में राम राजा के दर्शन करने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ। किंतु भीड़ अधिक होने के कारण तुरंत ही बाहर भी जाना पड़ा।

मंदिर प्रांगण में फोटोग्राफी वर्जित थी, सो बाहर मुख्य द्वार के ही कुछ फोटो हमारे कैमरे ने कैद कर लिये।

## दर्शन के बाद अब बारी थी भोजन की

अब हमारे पेट में चूहे दौड़ रहे थे। पास ही 'राम राजा ढाबा' था। वहाँ सेब टमाटर की सब्जी, दाल, तवा रोटी और पकौड़े ऑर्डर किए। कुछ ही समय में खाना टेबल पर था। सभी बिल्कुल चुपचाप भोजन का आनंद ले रहे थे। सब कुछ बहुत स्वादिष्ट था।

भरपेट भोजन के बाद हम पतिदेव महल और छतरियों को देखने के लिए टिकट खरीदने के लिये गए और सामने फुटपाथ पर बिक रही पेंटिंग्स की ओर दौड़ लिये। कुछ पेंटिंग्स खरीदने से ही पर्स काफी हल्का हो गया।

टिकट आ गए थे। हम सब छतरियाँ (बुंदेल राजाओं की छतरियाँ) देखने चल दिए। अंदर प्रविष्ट होते ही छतरियों के सामने बने सुंदर बगीचों और खिलखिलाते रंग-बिरंगे फूलों ने हमारा मन मोह लिया, वहीं ये छतरियाँ वास्तुकला का अद्‌भुत और उत्कृष्ट नमूना हैं। यहाँ एक डिस्प्ले बोर्ड पर गिद्ध संरक्षण से संबंधित सूचना अंकित थी। राम राजा के राज्य में यह गिद्ध के संरक्षण की सूचना पढ़ आँखों के सामने माँ सीता की रक्षा के लिए रावण से युद्ध करते जटायु का दृश्य घूम गया। गिद्ध, जटायु...यहाँ गिद्धों का संरक्षण, एक सुंदर और इको सिस्टम के लिए अनिवार्य प्रयास!

यहाँ से कुछ ही दूरी पर जाड़े की सुनहली धूप में झिलमिलाती कलकल बहती बेतवा नदी, उसके उर पर तैरती मोटरबोट्स, किनारे पर खड़े प्राचीन भवन, हरे-भरे वृक्ष..., बोटिंग का मन हो आया। पर यहाँ भी भीड़ के चलते करीब तीस मिनट की वेटिंग थी। चाय की तलब भी अपने नियत समय पर उठने लगी। पास ही गुमटी से मिट्टी के कुल्हड़ में गरमागरम अदरक वाली चाय ले नदी किनारे बैठ चुस्कियों से मन तुष्ट हो रहा था, तो प्रकृति के अनुपम सौंदर्य का रसपान कर नेत्र अपरिमित आनंद को प्राप्त कर रहे थे।

ओरछा राजाओं की छतरी

## 236 कमरों वाला जहाँगीर महल

इस नजारे का आनंद लेने के बाद हम झटपट जहाँगीर महल की ओर रवाना हुए।

जहाँगीर महल

वहाँ पहुँच हमने गाइड महोदय की शरण ली। गाइड महोदय ने इस महल की विस्तृत जानकारी दी। उन्होंने बताया जहाँगीर महल की स्थापना सत्रहवीं शताब्दी में हुई थी। ओरछा के शासक वीर सिंह देव ने मुगल सम्राट जहाँगीर के प्रथम बार ओरछा आगमन के अवसर पर जहाँगीर के स्वागत में इसका निर्माण कराया था।

महल का प्रवेश द्वार बहुत कलात्मक और पारंपरिक है। सामने की दीवार पूर्व की ओर है और फिरोजा टाइल्स से आवृत्त है। जहाँगीर महल एक तीन मंजिला संरचना है, जो लटकी हुई बालकनी, बरामदों और अलग-अलग कक्षों द्वारा चिह्नित है। जहाँगीर महल के गुंबदों का निर्माण तैमूरी रीति-रिवाजों के अनुसार किया गया। इसके भव्य विशाल कक्ष युद्ध हाथियों के प्रवेश के लिए पर्याप्त थे तथा इसकी ऊँची स्थिति के कारण तोप दूरी तक निशाना लगाने में सक्षम थीं।

अद्‌भुत! अद्‌भुत! अद्‌भुत प्राकृतिक सौंदर्य से परिपूर्ण ओरछा की सांस्कृतिक-ऐतिहासिक विरासत को देख हम आश्चर्य में डूब गए। सच में, भारत भूमि की माटी अपने अंदर कितना कुछ समेटे हुए है।

सूरज ढल रहा था, पंछी अपने अपने नीड़ की ओर उड़ान भर रहे थे। हमने भी वापसी डाली और ओरछा पैलेस से अपनी कार में घर का रुख किया। धन्यवाद ओरछा, इस अद्‌भुत थाती को सँजोए रखने के लिए!

# राजसमंद का अनूठा गाँव पिपलांत्री

पेड़ हमारे पर्यावरण, हमारे पारिस्थितिकी तंत्र, मानव व धरती के समस्त प्राणियों, वनस्पतियों को बनाए रखने के लिए बहुत आवश्यक हैं। कहना गलत नहीं होगा कि पेड़ जीवन का मुख्य आधार हैं। यही कारण भी है कि हमारी सनातन भारतीय संस्कृति में पेड़ों को युगों-युगों से बहुत ही अहम और महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यहाँ तक कि हमारे यहाँ तो पेड़ों की पूजा करने तक का प्रावधान रहा है। हिंदू धर्म में तो पीपल, बरगद, केला और नीम जैसे पेड़ों को अत्यंत पवित्र माना गया है। हमारी सनातन भारतीय संस्कृति में माना जाता है कि पेड़ों में मनुष्यों के समान चेतना होती है। सच तो यह है कि भारतीय संस्कृति में पेड़ों को अपनी संतान से बढ़कर माना गया है। पाठकों को बताता चलूँ कि भारतीय संस्कृति को अरण्य अर्थात वृक्ष की संस्कृति भी कहा जाता है। बहरहाल, आज जंगल कम हो रहे

हैं। वृक्षों की अंधाधुंध कटाई हो रही है। विकास के नाम पर, शहरीकरण और औद्योगिकीकरण के नाम पर वनों का अतिक्रमण हो रहा है। हाल ही में आई केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार, देश के 25 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में 13,056 वर्ग किमी वन क्षेत्र पर अतिक्रमण हुआ है, जो दिल्ली के कुल क्षेत्रफल से भी अधिक है, यह चिंताजनक है। जानकारी मिलती है कि मध्य प्रदेश में सबसे अधिक 5,460.9 वर्ग कि.मी. वन भूमि पर कब्जा है, जबकि 409 वर्ग कि.मी. भूमि अतिक्रमण मुक्त की जा चुकी है। कहना गलत नहीं होगा कि केंद्रीय पर्यावरण मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय हरित अधिकरण को सौंपी गई रिपोर्ट कहीं-न-कहीं देश में वनों के अतिक्रमण की भयावह स्थिति को उजागर करती है, लेकिन वहीं देश में कुछ ऐसे भी स्थान हैं, जो पर्यावरण संरक्षण की दिशा में देश और समाज के समक्ष एक मिसाल प्रस्तुत करते हैं।

पाठकों को बताता चलूँ कि राजस्थान के राजसमंद जिले का पिपलांत्री गाँव, पर्यावरण संरक्षण के साथ ही लड़कियों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण के लिए भी जाना जाता है। जानकारी के अनुसार, यहाँ हर नवजात बेटी के जन्म पर 111 पौधे लगाए जाते हैं। इस अनोखी पहल की वजह से यह गाँव हमारे देश में ही नहीं, अपितु पूरी दुनिया में प्रसिद्ध है। गाँव की खास बात यह है कि इस गाँव में हर तरफ हरियाली नजर आती है और यह पहाड़ियों से घिरा हुआ है। बहुत ही कम लोगों को यह जानकारी होगी कि गोचर भूमि संरक्षण, जल संरक्षण और पर्यावरण संरक्षण में इस गाँव का स्थान विश्व में प्रमुखता से लिया जाता है। इस गाँव में हजारों पेड़ लगाये गए हैं और यहाँ आप पक्षियों की चहचहाहट सुन सकते हैं।

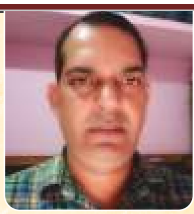

**सुनील कुमार महला**

**संप्रति :** एम.ए. (समाजशास्त्र, अंग्रेजी साहित्य), एम.एड., एम.फिल. एवं बी.जे.एम.सी. (शिक्षा)

**संप्रति :** स्वतंत्र लेखक, स्तंभकार व युवा साहित्यकार।

**संपर्क :** मोबाइल– 9828108858

ईमेल– mahalasunil@yahoo.com

इस गाँव में पेड़ों को भाई मानकर पेड़ों को राखी बाँधने की परंपरा आज भी कायम है। कहना गलत नहीं होगा कि पिपलांत्री गाँव का मॉडल हमारे देश व समाज ही नहीं, अपितु पूरी दुनिया के लिए एक मिसाल है। वास्तव में, बालिकाओं को बचाने और हमारे पर्यावरण व पारिस्थितिकी की रक्षा की नींव पर निर्मित यह पर्यावरण-स्त्रीवाद मॉडल अनेक लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत है।

राजस्थान के इस गाँव की कहानी वर्ष 2005 में इस गाँव के सरपंच (पिपलांत्री गाँव के पूर्व सरपंच/पंचायत प्रमुख) श्री श्याम सुंदर पालीवाल के साथ शुरू हुई। उन्होंने बालिकाओं को बचाने, जल संरक्षण करने तथा पेड़ लगाने का बीड़ा उठाया। उपलब्ध जानकारी के अनुसार, वर्ष 2000 से पहले, पिपलांत्री गाँव में संगमरमर की खदानों की भरमार थी, जैसा कि राजसमंद इनके लिए प्रसिद्ध रहा है। यहाँ पानी का स्तर 700-800 फीट तक नीचे चला गया था और पीने तक के लिए पानी नहीं बचा था। गाँव में सामान्य बुनियादी ढाँचे, जैसे कि सड़क, सिंचाई और कृषि का अभाव था। श्री पालीवाल को वर्ष 2007 में निर्जलीकरण के कारण अपनी 17 वर्षीय बेटी किरण की मृत्यु का सामना करना पड़ा। इससे पिपलांत्री को बदलने का उनका जुनून और बढ़ गया। अपनी बेटी किरण की मृत्यु के बाद, उन्होंने अपनी बेटी की याद में पहला पेड़ लगाया। इससे पिपलांत्री गाँव में क्रांति का विचार आया। पालीवाल इस बात से वाकिफ थे कि किस प्रकार से एक लड़की को जन्म से पहले ही मार दिया जाता था, श्री पालीवाल ने बेटी जन्म पर एक पेड़ लगाने के विचार को बढ़ाकर 111 पेड़ लगाने का लक्ष्य रखा, इससे एक सामाजिक बदलाव की शुरुआत हुई।

उनकी इस पहल के कारण अब तक तीन लाख से अधिक पेड़ लगाये गए हैं और 700-800 फीट से नीचे का जल स्तर मात्र पाँच वर्षों में 15 फीट ऊपर उठ गया है। इतना ही नहीं, पेड़ों को दीमक से बचाने और फलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए उनके चारों ओर 2.5 मिलियन से अधिक एलोवेरा के पौधे भी लगाये गए हैं। एलोवेरा उत्पादों से आर्थिक बदलाव भी आए हैं, लोगों को रोजगार मिला है। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि गाँव में 'किरण निधि' योजना की शुरुआत की गई, जिसमें पंचायत द्वारा बालिका के नाम पर बैंक खाता खोला जाता था और उसमें 21,000 रुपये की शुरुआती राशि जमा की जाती थी। माता-पिता (जो शेष 11,000 रुपये का योगदान करते हैं) को एक हलफनामे पर हस्ताक्षर करना होता है, जिसमें वादा किया जाता है कि वे कन्या भ्रूण हत्या नहीं करेंगे या अपनी बेटी की शादी 18 वर्ष की आयु से पहले नहीं करेंगे और साथ ही, वे उसे शिक्षित भी करेंगे। इससे यह सुनिश्चित होता है कि कोई भी बालिका शिक्षा से वंचित न रहे और उसके पास अपने भविष्य के लिए पर्याप्त धन हो।

इतना ही नहीं, श्री पालीवाल ने खदान प्रबंधन का मुद्दा भी अपने हाथों में ले लिया, क्योंकि मार्बल का फेंका गया कचरा एक बड़ी समस्या था और इससे गाँव की जमीनें बंजर हो रही थीं। श्री पालीवाल को निर्मल ग्राम पंचायत पुरस्कार स्वरूप 5 लाख रुपये मिले। श्री पालीवाल के कारण आज पिपलांत्री अपने प्राकृतिक संसाधनों पर एक आत्मनिर्भर और समृद्ध गाँव है। इतना ही नहीं, महिला व्यवसाय और शिक्षा के विकास से बालिका सशक्तीकरण का मुख्य लक्ष्य पूरा हुआ है। वन्य जीवन में वृद्धि देखी गई है, जल संरक्षण हुआ है और गाँव के लोग समृद्ध और खुशहाल हैं। श्री पालीवाल की उपलब्धियों को देखते हुए उन्हें वर्ष 2021 में प्रतिष्ठित पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

बहरहाल, बेटी के जन्म को इस गाँव में एक बड़े उत्सव के रूप में मनाया जाता है। आज भी बेटी के जन्म पर यहाँ 111 पौधे लगाने की परंपरा जारी है। राजस्थान के राजसमंद जिले का यह गाँव लैंगिक समानता और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में सामुदायिक भागीदारी का एक अनोखा, नायाब व खूबसूरत मॉडल प्रस्तुत कर रहा है। सच तो यह है कि इस गाँव की यह परंपरा महज एक रिवायती रस्म नहीं, बल्कि आज एक सामाजिक आंदोलन बन चुकी है, जो समाज की मानसिकता को बदलने का कार्य भी कर रही है। यह आंदोलन दर्शाता है कि यदि संकल्प सच्चा हो, तो इस दुनिया में कोई भी कार्य असंभव नहीं है। वास्तव में, गाँव की यह अनूठी प्रथा न सिर्फ जीवन के उत्सव का प्रतीक है, बल्कि पर्यावरण और लड़कियों, दोनों के पोषण और सुरक्षा की शपथ भी है।

आज वृक्षारोपण के संकल्प से पूरे गाँव की बयार बदल चुकी है। हर तरफ हरीतिमा का वातावरण नजर आता है। आज गाँव में नीम, शीशम, आम और आँवला समेत अनेक प्रजातियाँ विद्यमान हैं। जल संरक्षण, वनस्पतियों का संरक्षण और साथ ही बेटियों की रक्षा का अनूठा संगम इसी गाँव में देखने को मिलता है। मुहिम का असर इस कदर हुआ है कि आज बेटियों को बोझ नहीं, बल्कि गौरव का प्रतीक माना जाने लगा है। मैं कहना चाहूँगा कि पिपलांत्री का यह मॉडल लैंगिक समानता, जलवायु अनुकूलन, जैव-विविधता और टिकाऊ विकास का अनूठा प्रतीक बन चुका है। वास्तव में, पर्यावरण संरक्षण और लैंगिक समानता के प्रति गाँव के ऐसे समग्र दृष्टिकोण ने गाँव को सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक प्रगति के प्रतीक में बदल दिया है।

अंत में, राजस्थान के राजसमंद के पिपलांत्री गाँव की यह कहानी महिला सशक्तीकरण, जल संरक्षण, पर्यावरण संरक्षण की दिशा में जमीनी पहल को दिखाती है। हमें यह चाहिए कि हम राजसमंद के इस गाँव से प्रेरणा लें और अपनी युवा पीढ़ी को जागरूक करें, ताकि वे पर्यावरण संरक्षण के साथ ही जल संरक्षण और स्त्री-पुरुष समानता के प्रति कृतसंकल्पित हो सकें।

# बिहू
# असम का प्राणोत्सव

असम का नाम सुनते ही लोगों की कल्पनाओं में हरे-भरे पहाड़, खेत-खलिहान, चाय के बागान और ब्रह्मपुत्र का दृश्य घूमने लगता है। असम अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए एक लोकप्रिय पर्यटन स्थल है। अन्य उत्तर-पूर्वी राज्यों से घिरा हुआ असम भारत का एक सीमांत राज्य भी है। भारत-भूटान तथा भारत-बाँग्लादेश सीमा कुछ भागों में असम से जुड़ी है। असम के उत्तर में अरुणाचल प्रदेश, पूर्व में नागालैंड तथा मणिपुर, दक्षिण में मिजोरम तथा मेघालय एवं पश्चिम में बाँग्लादेश स्थित है। असम एक सर्वधर्म समुदाय वाला अनोखा राज्य है, यद्यपि हिंदू धर्म को मानने वाले लोगों की संख्या सर्वाधिक है।

असम कृषि प्रधान राज्य है और यहाँ के लोगों की मुख्य जीविका कृषि ही है। वैसे तो असम के लोग सभी धर्मों के उत्सवों का पालन करते हैं, परंतु असमिया लोगों के द्वारा मनाए जाने वाला सबसे लोकप्रिय त्योहार बिहू है। यह कृषि से कैसे जुड़ा, इसके बारे में जानते हैं। खेती यहाँ की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। असम अपने नाम के साथ प्राकृतिक सौंदर्य, प्रेम, भाईचारा तथा विभिन्न संस्कृतियों इत्यादि की झलक का प्रतीक है। बिहू एक ही उत्सव का नाम है, लेकिन पूरे वर्ष में तीन बार अलग-अलग ढंग से मनाए जाने वाला अनोखा त्योहार है। यह केवल एक उत्सव ही नहीं, अपितु जीवन का सहज-सुलभ दर्शन के साथ भी हमारा साक्षात्कार कराता है।

इस उत्सव में चार्वाक दर्शन, जिसे 'लोकायत' दर्शन भी कहते हैं, का प्रभाव परिलक्षित होता है, जिसके अनुसार मनुष्य जब तक जिए, सुखपूर्वक जिए। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि यह उत्सव नैतिकता की उपेक्षा करता है। बिहू के साथ सदैव सामूहिक आनंद एवं स्फूर्ति जुड़ी रहती है। इसलिए इसका दर्शन आत्मकेंद्रित न होकर जनकेंद्रित भी है। इस प्राचीन असमिया समाज में बिहू का जन्म हुआ। वह समाज कृषिजीवी ग्रामीण समाज था और कृषि कार्य अकेले सँभालना कठिन था। इसके लिए सामूहिक प्रयत्न और आपसी संबंधों का होना आवश्यक है। असम का प्राचीन ग्रामीण समाज इस बात पर बहुत सहजता से


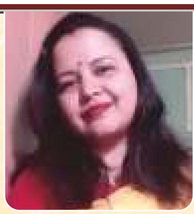

**सबिता दास सवि**

**शिक्षा :** बी.ए (दर्शनशास्त्र), बी.एड, एम.ए (हिंदी), डी.एल.एड (हिंदी) एवं असमिया, बाँग्ला और अंग्रेजी भाषाओं की ज्ञाता

**प्रकाशन :** 'किनारे पर आकर' (2020), 'बची हुई सुंदरता' (2025) काव्य-संग्रह के साथ-साथ विभिन्न राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में गद्य की अनेक विधाओं में लेखन कार्य प्रकाशित

**संप्रति :** सरकारी विद्यालय में अध्यापिका। वर्तमान में स्रोत व्यक्ति के पद पर नियुक्त

**सम्मान :** साहित्य अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, मध्यप्रदेश शासन संस्कृति विभाग, भोपाल द्वारा अखिल भारतीय अटल बिहारी वाजपेयी (कविता) (2020) पुरस्कार से सम्मानित, पूर्वोत्तर हिंदी साहित्य अकादमी, तेजपुर, असम से सारस्वत सम्मान (2022), सिद्धार्थ तथागत कला-साहित्य संस्थान, सिद्धार्थ नगर(उ.प्र) से तथागत विशिष्ट सृजन सम्मान (2022) से सम्मानित

**संपर्क :** मोबाइल– 9435631938

ईमेल– sabitasingh3691@gmail.com

विश्वास करता है कि धरती को उर्वर बनाने और अच्छी फसल के लिए तैयार करने के लिए नृत्य-गीत द्वारा मनोरंजन करना आवश्यक है और इस प्रथा को आधुनिक विद्वानों ने fertility cult के साथ जोड़ा है। पूँजीवादी संस्कृति में धनाढ्य वर्ग के लोगों के पास जीवन के सारे सुख उपभोग के साधन हो सकते हैं, पर ग्रामीण समाज के पास ऐसी संभावना बिल्कुल नहीं है, इसलिए ये किसान धरती को ही अपना सब कुछ मानते हैं। उनका मानना है कि स्त्री-पुरुष बराबर मेहनत करके धरती से उत्तम गुणवत्ता का फसल उत्पादन कर सकते हैं। उसे लेकर ही वे दिन-रात परिश्रम करते हैं।

बिहू धरती को पूजने का उत्सव है, बड़ों को सम्मान देने का उत्सव है और फसल में काम आने वाले पशुओं का भी सेवा-सत्कार करने का उत्सव है। बिहू केवल असम का जातीय उत्सव ही नहीं, बल्कि असम का प्राणोत्सव भी है। बिहू की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता है कि यह एक धर्मनिरपेक्ष उत्सव है। जाति, धर्म, वर्ण इत्यादि से परे किसी भी संप्रदाय से जुड़े लोग इसको मनाते हैं। जैसा कि आप जानते हैं, बिहू मूलतः एक कृषि केंद्रित उत्सव है और यह फसल के प्रारंभ, फसल के उगने के ऋतु और फसल की कटाई के दौरान मनाया जाता है। असम में मनाए जाने वाले तीन प्रकार के बिहू इस तरह हैं—(1) बोहाग या रंगाली बिहू (2) काति या कंगाली बिहू और (3) माघ या भोगाली बिहू।

बिहू असम में व्याप्त जातीय सद्भावना की वार्ता भी प्रसारित करता है। बिहू को असमिया जनसमुदाय 'बापोति साहोन' अर्थात पैतृक रूप से मिली संपत्ति के रूप में मनाते हैं। 'बिहू' शब्द की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न मत हैं। यद्यपि, विषुव संक्रांति में बिहू मनाया जाता है, इसलिए 'विषु' शब्द से ही 'बिहू' शब्द की उत्पत्ति हुई, ऐसा मानना है विद्वानों का। वैदिक शब्द 'विषु' का अर्थ है—प्रजाजन और प्रजा के द्वारा मनाए जाने वाला त्योहार। इसलिए 'विष' शब्द से 'विषु' और 'विषु' से ही 'बिहू' शब्द का आना कोई अचरज की बात नहीं। लेकिन 'बिहू' नाम की उत्पत्ति कहीं से भी हो, बिहू असम के प्राण समान है तथा जीवन के सारे रंग, हर्ष, आशाएँ, आवेग, अनुभूति—सब कुछ इसके साथ जुड़ा है। बिहू के गीतों के हर सुर तथा हर एक छंद में जीवन की सरलता, उदारता, अतिथिपरायणता और सबसे ऊपर, ईश्वर की असीम सौंदर्य से भरपूर सृष्टि के प्रति आभार प्रकट करने का एक वाङ्मय प्रकाश है। बिहू के साथ असमिया जाति का प्राण इस प्रकार जुड़ा है कि बिहू को छोड़कर असमिया जाति की कृष्टि संस्कृति, सभ्यता, यहाँ तक कि साहित्य की जो विशाल संपदा है वह भी कंगाल हो जाए।

## बिहू के प्रकार

बिहू मुख्यतः तीन प्रकार के हैं। बोहाग अथवा रंगाली बिहू, काति अथवा कंगाली बिहू, माघ अथवा भोगाली बिहू।

## बोहाग बिहू

बोहाग बिहू अथवा रंगाली बिहू तीनों बिहुओं में मुख्य है। वसंत ऋतु में मनाए जाने वाले इस बिहू में प्रकृति अपना रंग बदलती है। वसंत के आगमन से ही वर्षा की पहली बूँद का स्पर्श पाकर प्रकृति ऊर्वर हो जाती है। पेड़-पौधों में नए पत्ते खिल उठते हैं। हर पौधे में नये-नये फूल खिलकर मानो नई रोशनी का पर्व मनाते हैं। प्रकृति के इस आनंदमय स्वरूप को देखकर युवक-युवतियों के मन में प्रेम का भाव जागृत होता है। मन रुई की भाँति किसी क्षितिज की ओर मानो उड़ान भरता है। जन विश्वास के अनुसार, नवयुवक एवं युवतियाँ खुले खेतों में जाकर प्रेम गीतों से पुरुष स्वरूप मेघ और नृत्य की भंगिमाओं से नारी स्वरूपा प्रकृति को उत्तेजित कर वर्षा द्वारा प्रणय स्थापित कर धरा की शस्यसंभवा होने की जो प्रक्रिया पूर्ण करते हैं, उसी में रंगाली अथवा बोहाग बिहू का तात्पर्य निहित है।

बोहाग बिहू के साथ है रंग, हर्षोल्लास। नृत्य-गीत के साथ रीति-रिवाज, लोकाचार और जनविश्वास भी इससे जुड़ा हुआ है।

बोहाग अथवा रंगाली बिहू चैत्र संक्रांति से शुरू होकर वैशाख महीने के छह दिनों तक मनाया जाता है। यह चैत्र के बीच से मनाया जाता है, इसलिए इसे चैत्र बिहू के नाम से भी जाना जाता है।

सात दिन मनाए जाने वाले प्रत्येक बिहू का अपना अलग-अलग नाम है—(1) गोरु बिहू, (2) मानूह बिहू, (3) गोसाई बिहू, (4) तात बिहू, (5) नांगल बिहू, (6) जियोरी अथवा सेनेही बिहू एवं (7) सेरा बिहू। आजकल वैसे भी यह सिर्फ सात दिन तक नहीं, बल्कि गाँव तथा शहरों में पूरे महीने मनाया जाता है। बोहाग बिहू का पहला दिन चैत्र संक्रांति के दिन असमिया जनजीवन के कृषि कर्म का प्रमुख संबल बैल के नाम समर्पित करते हुए गोरु बिहू मनाया जाता है। इस दिन गाय और बैल को गौ लक्ष्मी मानकर पूजा जाता है। इस दिन सुबह गाय-भैंस को सिलबट्टे पर पीसी हुई हल्दी और उड़द की दाल को पीसकर बनाए उबटन लगाकर, सींग में तेल लगाकर, माथे पर तिलक लगाकर एक पेड़ के पतली डाली से पीठ पर चपत लगाकर सामने की किसी नदी या पोखर में ले जाकर नहलाया जाता है; साथ में, लौकी, खीरा, बैंगन, हल्दी इत्यादि मवेशियों के बदन की ओर फेंककर गीत गाया जाता है। 'लौकी खा, बैंगन खा, दिन-दिन बढ़ता जा, माँ छोटी पिता छोटे, सबसे बड़ी गाय तू बन जा' (असमिया से अनुवाद)।

इस तरह करने से मवेशियों की श्रीवृद्धि होती है, ऐसा माना जाता है। शाम को नयी रस्सी से गाय को बाँधकर उसके पैरों को धुलाकर धूप/अगरबत्ती जलाकर नये पंखे से पंखा करके खिलाया-पिलाया जाता है। मूलतः ऐसा कहा जा सकता है कि नये साल के प्रारंभ में नये उत्साह के साथ शरीर में नई ऊर्जा का संचार करने के लिए ऐसा किया जाता है, जिससे ये मवेशी पुनः खेतों में हल जोतने में जुट जाएँ। इन्हें पूजकर तैयार किया जाता है। दूसरे दिन से मानूह बिहू

(मनुष्य बिहू) मनाया जाता है। इस अवसर पर हाथ से बुने पारंपरिक गमछे और वस्त्रों को प्रदान करना ही इस बिहू की विशेषता है। नये साल में हर आपदा आँधी, तूफान, बीमारी इत्यादि से रक्षा करने के लिए शिव भगवान से प्रार्थना करते हुए निम्नोक्त मंत्र पत्ते पर लिखकर दरवाजे पर टाँगे जाते हैं :

देव देव महादेव नीलग्रीव जटाधर।
वात वृष्टि हरं देव महादेव नमोस्तुते॥

मानव बिहू के दिन परिवार के सभी सदस्य नहा-धोकर एकजुट होते हैं तथा छोटे-बड़ों को प्रणाम करके उनका आशीर्वाद लेते हैं। घर की बहू और सास-ससुर को पारंपरिक गमछा, चैलेंग-चादर तथा पान-तांबूल देकर बिहू के उपलक्ष्य में बने पकवान परोसते हैं। बड़े इस अवसर पर छोटों को यथासंभव उपहार देते हैं।

**"असम का जातीय अथवा प्राणोत्सव बिहू ने समाज में एकता और भाईचारे की भावना को अटूट रखा है। यह ऐसा त्योहार है, जिसने सामूहिक रूप से हर वर्ग को एकता की डोर से बाँध रखा है।"**

बिहू में स्वजनों को या मित्रों को दिये गए हर उपहार को वैसे तो 'बिहूवान' कहा जाता है। यद्यपि, 'बिहूवान' शब्द से तात्पर्य गमछा को ही समझा जाता है। बोहाग बिहू हर्षोल्लास का त्योहार है। 'बिहू नृत्य', 'बिहू नाम' के अलावा भी इस बिहू में कई तरह के खेलों का भी लोग आनंद लेते हैं।

बोहाग बिहू के तीसरे दिन गोसाई बिहू मनाया जाता है। इस दिन गाँव के सार्वजनिक 'नाम घर' में 'नाम प्रसंग' गाया जाता है।

असमिया जनजीवन का एक अन्यतम एवं प्रिय संसाधन है—'तात-शाल'। अर्थात एक ऐसा करघा, जिसमें असमिया स्त्री-पुरुष अपने हाथों से कपड़े बुनते हैं तथा यह करघा उनके घर-आँगन की शान बढ़ाता है, इसलिए चौथे दिन का तातोर या तात-बिहू मनाया जाता है।

पाँचवें दिन किसानों के कृषि कर्म का मुख्य उपकरण नांगल यानी हल बिहू मनाया जाता है। छठे दिन बेटियाँ अपने पिता के घर आती है, इसलिए इस दिन को जियोरी (बेटी) अथवा सेनेही प्यारी बिहू के रूप में मनाया जाता है।

सातवें दिन सेरा बिहू होता है। एक प्रकार से देखा जाए तो यह बोहाग बिहू के समापन की तरह मनाया जाता है। इस दिन लोग एक-दूसरे के घरों में पारंपरिक मिठाई 'पीठा' का आदान-प्रदान करते हैं।

## काति बिहू

काति बिहू असमिया जनजीवन का प्राणस्वरूप है। आश्विन महीने के आखिरी दिन असमिया समाज इसे आलोक पर्व के रूप में पौराणिक युग से मनाता आ रहा है। असम के कृषिजीवी काति बिहू को भी बोहाग बिहू के जैसे ही प्रेम एवं सम्मान से मनाता आ रहा है। कई तरह की कृषि से जुड़े धार्मिक तथा आध्यात्मिक आस्थाएँ काति बिहू के साथ जुड़ी हैं।

जेठ, आषाढ़, सावन—ये सारे कृषि के महीने हैं। सिर का पसीना जमीन पर गिराकर जी-तोड़ मेहनत करके किसान धरती पर फसल रोपते हैं। मन में बस यही आशा लेकर चलते हैं कि एक दिन सोने के दाने फलेंगे, अभाव के दिन खत्म होंगे। असमिया जन-समाज काति बिहू भोग एवं आनंद के विपरीत, सीमित रूप में बिना किसी आडंबर के मनाते हैं। इस समय किसानों के अनाज का भंडार खाली रहता है। अभाव से ग्रसित होने के बावजूद, काति बिहू को प्राचीन काल से ही खेतों की खुशहाली के लिए विविध नियमों से पालन किया जा रहा है। इस दिन प्रकृति के ऊपर निर्भरशील किसान अच्छी उपज के लिए अपने खेत, अनाज के भंडार तथा तुलसी के पौधे के सामने दिया जलाते हैं। माँ लक्ष्मी के शुभ आगमन के लिए किसान अपने घर के लगभग हर हिस्से में एक-एक दिया जलाते हैं। घर-आँगन की सफाई करना इस समय शुभ माना जाता है। काति बिहू की शाम को लोग एक लंबे बाँस के ऊपरी हिस्से में भी दिया जलाकर उसे जमीन पर गाड़ देते हैं। इस तरह ऊँचे करके दिया जलाने से यह मान्यता है कि इस रोशनी से पितरों की आत्मा को शांति मिलती है और वे स्वर्ग की ओर यात्रा करते हैं।

## माघ बिहू

हिंदू शास्त्र के अनुसार बारह राशि चक्र हैं और सूर्य 12 महीनों में 12 राशियों से होकर गुजरता है। इस तरह जब सूर्य मकर राशि में प्रवेश करता है, तब असमिया लोग माघ बिहू को मनाते हैं। अर्थात पौष माह के अंत एवं माघ के प्रथम दिन माघ बिहू मनाया जाता है। माघ बिहू मुख्यतः तीन दिनों तक मनाया जाता है। पौष के महीने में लोग शाली धान, माह, तिल, मूँग आदि अनाजों से अपने घर का भंडार भरते हैं। इस दिन सभी के घर अनाजों से भरपूर होने के कारण यह बिहू भोगाली नाम से प्रचलित है। भोगाली का अर्थ उपभोग करना है। इन दिनों हर वर्ग के लोगों के घर अनाज से भरे होते हैं। इसी कारण इस बिहू में खान-पान पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। अलग-अलग तरह के व्यंजन मूलतः चावल से बने मिष्ठान इनमें प्रमुख हैं। माघ बिहू का मुख्य आकर्षण है, खेर या पुआल से बना मेजि या भेलाघर जलाना। इस समय सूरज मकर संक्रांति रेखा के करीब पहुँच जाता है, इसलिए इसे संक्रांति बिहू या दोमाही मकर संक्रांति भी कहा जाता है। असम का जातीय अथवा प्राणोत्सव बिहू ने समाज में एकता और भाईचारे की भावना को अटूट रखा है। यह ऐसा त्योहार है, जिसने सामूहिक रूप से हर वर्ग को एकता की डोर से बाँध रखा है। बिहू के द्वारा ही लोगों में वस्त्र-शिल्प तथा विभिन्न क्रियाओं का भी उन्नतिकरण हो रहा है। बिहू से ही असमिया समाज ने अपनी एक अलग पहचान बना रखी है।

# गहने क्यों पहनें?

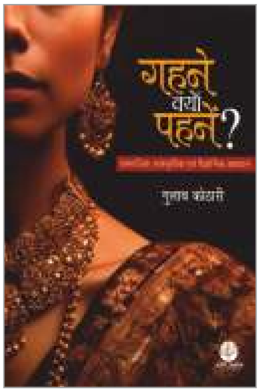


*समीक्षक* : **कमलेश पाण्डेय 'पुष्प'**

*लेखक* : **गुलाब कोठारी**

*प्रकाशक* : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

*पृष्ठ* : 268

*मूल्य* : रु. 860/-

आभूषण मानव-जीवन में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं, क्योंकि यह न केवल सौंदर्य में चार-चाँद लगाते हैं, बल्कि एक्यूप्रेशर सिद्धांत के अनुसार शरीर में विभिन्न ऊर्जा केंद्रों को नियंत्रित भी करते हैं। यह पुस्तक आभूषणों को धारण करने की परंपरा से लेकर उसके महत्व एवं जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों पर विस्तृत प्रकाश डालती है। लेखक के अनुसार, आभूषण न केवल कलियुग में मानव से जुड़े हैं, बल्कि सतयुग में देवी-देवताओं से भी समान रूप से जुड़े दिखाई पड़ते हैं। हम बिना आभूषण के देवी-देवताओं के स्वरूप की कल्पना तक नहीं कर सकते।

पुस्तक में विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत आभूषणों से जुड़ी रोचक जानकारियाँ दी गई हैं। 'आभूषण का अर्थ' अध्याय में बतलाया गया है कि आभूषण वह दिव्य वस्तु है, जिसे देखकर मानव चमत्कृत हो उठता है। इसके प्रति मनुष्य की अभिरुचि आदिकाल से ही रही है। वेदों में आभूषणों को सौंदर्य व यश बढ़ाने वाला तथा मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाला कहा गया है। 'परंपरा और सामाजिक मान्यताएँ' शीर्षक अध्याय में मानव-जीवन के 16 संस्कारों में आभूषणों के महत्व के साथ ही यह भी बताया गया है कि धातुओं में सोना और चाँदी के अलावा पीतल, ताँबा, एल्युमीनियम और राँगा मुख्य रूप से प्रचलन में रहे हैं। पुस्तक में मनमोहक चित्रों के माध्यम से विभिन्न आभूषणों को धारण करने के तौर-तरीकों को भी प्रदर्शित किया गया है। सैंधव सभ्यता, शुंग काल, कुषाण काल, वैदिक काल, मौर्य काल एवं गुप्त काल में केश-विन्यास के तरीकों को बताया गया है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ो सभ्यता में प्रचलित स्वर्ण, रजत, ताम्र, हाथी दाँत, चीनी मिट्‌टी और मनकों से बने आभूषणों के प्रयोग का भी उल्लेख किया गया है।

'आभूषण बत्तीसी' शीर्षक अध्याय में 32 तरह के आभूषणों के नामों का उल्लेख करते हुए, युवती के किन अंगों पर धारण करना है, मनमोहक आरेख के द्वारा बताया गया है। साथ ही प्राचीन भारतीय आभूषणों को धारण करने के अंगों को भी आरेख के द्वारा बताया गया है।

पुस्तक में 'रत्नों के गुणधर्म' के अंतर्गत यह उल्लेख किया गया है कि कौन-से रत्न को धारण करने पर मानव-शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है। इसी क्रम में प्रचलित रत्नों—हीरा, पन्ना, माणिक्य, पुखराज, गोमेद, मोती, मूँगा इत्यादि की प्रकृति के बारे में भी विस्तार से बताया गया है। इसके अलावा, सप्त धातुओं के बारे में भी अच्छी जानकारी दी गई है। सप्त धातुओं को आभूषण के रूप में धारण करने का प्रचलन तब आया जब ज्ञात हुआ कि इनमें रोगनाशक विशिष्ट क्षमता होती है। 'प्रकृति और रंग' शीर्षक के अंतर्गत शरीर पर इनके प्रभाव को बताया गया है तो 'रत्न-राशियों का सतरंगा संसार' अनिष्ट फल रोकने के लिए रत्न धारण करने पर बल देता है। 'वस्त्र परिधान' के अंतर्गत प्रचलित वस्त्रालंकारों की जानकारी दी गई है, तो 'गोदना और मेहँदी' के अंतर्गत स्त्री व पुरुष, दोनों के ही गोदना के नमूने दिये गए हैं। मेहँदी के भी कई नमूनों को पुस्तक में स्थान दिया गया है और इसे एक प्रमुख अलंकरण माना गया है। 'रत्न चिकित्सा' और 'धातु चिकित्सा' के अंतर्गत पुस्तक में बहुत ही लाभप्रद जानकारी दी गई है। इससे अनेक जटिल रोगों को ठीक करने के बारे में बताया गया है। जैसा कि चरक, सुश्रुत, नागार्जुन आदि ने स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह, अभ्रक, पारा आदि से औषधियाँ बनाने की विधियों का अपने ग्रंथों में उल्लेख किया है। 'आभूषण चिकित्सा' के अंतर्गत विभिन्न आभूषणों से बीमारियों के दूर होने के बारे में अच्छी जानकारी दी गई है। 'पंचमहाभूत का चीनी सिद्धांत' के अंतर्गत एक्यूपंक्चर के 'चिन' और 'यांग' मेरिडियन के प्रमुख बिंदुओं की भी जानकारी आरेख के माध्यम से दी गई है।

पुस्तक में 'केश-विन्यास : वैज्ञानिक दृष्टिकोण' के अंतर्गत आरेखों के माध्यम से कई विकारों को दूर किए जाने की जानकारी उपयोगी है तो 'वनस्पति, शृंगार और स्वास्थ्य' के अंतर्गत वनस्पतियों से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने की जानकारी अद्‌भुत लगती है, जैसे कि—रुद्राक्ष, निर्गुंडी, हरिद्रा, लवंग, कुश, पीपल, सहदेई आदि। आगे के पृष्ठों पर 'ग्रह और उनसे होने वाले रोग' के अंतर्गत दी गई जानकारी सटीक लगती है। 'आभूषणों में नए चलन' के अंतर्गत चाँद, चिड़िया, मोर, मोती और गुलाब को आधुनिकीकरण का उदाहरण मानते हुए सौंदर्य-चेतना का हिस्सा बताया गया है। पुस्तक के आखिर में लोकगीत एवं मुहावरों को भी स्थान दिया गया है। इसमें भैंरू जी, लक्ष्मी जी, चौथ माता आदि के गीत के साथ-साथ राखी का गीत, बधाई का गीत, बन्नी का गीत आदि भी हैं। पुस्तक के अध्ययन से पाठक गहनों के विभिन्न प्रकारों और उनके पहनने से होने वाले लाभ से तो अवगत होते ही हैं, साथ ही, इसके सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक पहलू से जुड़े ढेर सारे अद्‌भुत तथ्यों को भी आत्मसात करते हैं।

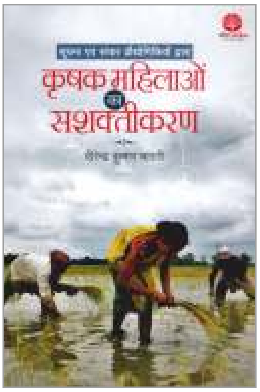


*समीक्षक :* **रमाशंकर सिंह**

*लेखक :* **प्रो. (डॉ.) वीरेन्द्र कुमार भारती**

*प्रकाशक :* राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

*पृष्ठ :* 253

*मूल्य :* रु. 345/-

## सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के द्वारा

# कृषक महिलाओं का सशक्तीकरण

सूचना और संचार के क्षेत्र में दशकों के अनुभव के साथ वीरेन्द्र कुमार भारती ने 'सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकियों के द्वारा कृषक महिलाओं का सशक्तीकरण' नामक पुस्तक की रचना की है। इसे नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया ने 2025 में प्रकाशित किया है। यह पुस्तक मूलतः इक्कीसवीं शताब्दी में कृषक महिलाओं के द्वारा सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी से जुड़ाव और उनके जीवन में आए परिवर्तनों को दर्ज करती है। पुस्तक की सामग्री मुख्यतः सरकारी स्रोतों से ली गई है और तब भी इसे पढ़ते हुए 1980-90 के दशक के लोकप्रिय टेलीविजन कार्यक्रम 'कृषि दर्शन' की याद आती है। बिना किसी अतिरिक्त बलाघात के यह किताब महिला सशक्तीकरण की कहानी कहती है।

वीरेन्द्र कुमार भारती की समीक्ष्य पुस्तक के 11 अध्यायों में बताया गया है कि किस प्रकार भारत में कृषक महिलाएँ कृषि क्षेत्र की रीढ़ रही हैं। वे खेती से लेकर ग्रामीण अर्थव्यवस्था तक महत्वपूर्ण योगदान देती रही हैं। उनकी स्थिति में सुधार के लिए पिछले एक दशक में कई पहलें आरंभ की गई हैं। ग्रामीण महिला उद्यमी स्वयं-सहायता समूहों के माध्यम से आर्थिक रूप से सशक्त हो रही हैं। सरकारी सहायता, विशेषज्ञ सलाह और वित्तीय स्वतंत्रता उन्हें नेतृत्वकारी भूमिका में लाकर खड़ा करती है। देशभर में फैले कृषि विज्ञान केंद्र कृषक महिलाओं को प्रशिक्षण और नवीन तकनीकों से जोड़कर उनके कौशल को निखार रहे हैं। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ने कृषि ज्ञान के प्रसार को आसान बनाया है, जिससे महिलाएँ आधुनिक खेती की तकनीकों को अपना रही हैं। सोशल मीडिया ने भी कृषि क्रांति को बढ़ावा दिया है, जहाँ किसान महिलाएँ अपनी उपज का प्रचार और बिक्री कर रही हैं। इसी प्रकार, टिकाऊ कृषि के लिए स्वदेशी तकनीकी ज्ञान को बढ़ावा देना आवश्यक है। यह सभी प्रयास कृषक महिलाओं को प्रगति के पथ पर ले जा रहे हैं, जिससे वे न केवल अपने परिवार, बल्कि पूरे समुदाय को सशक्त बना रही हैं।

यह किताब बहुत धीमे से पुरुष प्रभुता को भी तोड़ती है। परंपरागत रूप से खेती-किसानी को पुरुषों का क्षेत्र माना जाता रहा है, लेकिन यह पुस्तक इस मिथक को तोड़ती है। महिलाएँ न केवल किसान के रूप में, बल्कि कृषि-मजदूर और उद्यमी के रूप में भी अपनी पहचान स्थापित कर रही हैं। लेखक ने स्वयं-सहायता समूहों के योगदान को विशेष रूप से रेखांकित किया है, जो महिलाओं के लिए संजीवनी साबित हुए हैं। इन समूहों ने आर्थिक स्वावलंबन, सामाजिक सशक्तीकरण और नेतृत्व विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। यह पुस्तक महिलाओं की मेहनत, दृढ़ता और बदलते ग्रामीण परिदृश्य को प्रभावी ढंग से चित्रित करती है। यह किताब 'लघु' का बखान है। लेखक ने दिखाया है कि स्थानीय स्तर पर मुर्गीपालन, बकरीपालन और मधुमक्खी पालन जैसे छोटे उद्योगों से महिलाएँ न केवल अतिरिक्त आय अर्जित करती हैं, बल्कि वे चारा प्रबंधन और समय प्रबंधन भी बड़ी कुशलता से करती हैं। उनके आस-पास जो भी चीज मौजूद है, उसी से वे सृजन करना जानती हैं। लेखक बताते हैं कि महिलाएँ किस तरह से कृषि क्षेत्र में बढ़ रही हैं और लगभग शून्य या न्यूनतम लागत से वे सरकंडे व काँस से रंग-बिरंगी टोकरियाँ बनाकर पर्यावरण-अनुकूल डलिया बेचकर चार पैसे जोड़ती हैं। कृषि वानिकी में महिलाएँ फसलों पर श्रम करती हैं और पेड़ों के पत्तों से पत्तल-दोने बनाती हैं। हालाँकि, इन उत्पादों को संगठित रूप से बढ़ावा देने की आवश्यकता है, क्योंकि नवीन किस्म की तकनीकों ने इनको धीरे-धीरे बाजार से बाहर कर दिया है और इस कारण से उन्हें अपने उत्पाद की कम कीमत भी मिलती है।

इस किताब में कुछ सफल महिलाओं की गाथा भी जोड़ी गई है, जो उनके काम करने के ढंग, चुनौतियों और सफलताओं को दर्ज करती है। श्रीमती खुशबू ने 2013 में मसाला प्रसंस्करण इकाई शुरू की थी, जो चिकन, मीट, पनीर मसाला बनाती है। 2017 में इसका टर्नओवर 20 लाख रुपये और मुनाफा 4 लाख रुपये वार्षिक तक जा पहुँचा। यही नहीं, खुशबू मास्टर ट्रेनर के रूप में महिलाओं को उद्यम स्थापित करने हेतु प्रशिक्षित भी करती हैं। खुशबू को 2018 में नवोन्मेषी कृषक पुरस्कार मिला।

उड़ीसा की श्रीमती गौरीप्रिया ने मशीनीकरण, जैव उर्वरक, वर्मीकंपोस्ट और उन्नत तकनीकों से खेती को समृद्ध किया। उन्होंने 800 महिलाओं को खुम्भी उत्पादन का प्रशिक्षण दिया और बीज उत्पादन केंद्र स्थापित किया। उन्हें 2019 में नवोन्मेषी कृषक पुरस्कार मिला।

इसी प्रकार, श्रीमती पूजा शर्मा (गुरुग्राम) ने स्वयं-सहायता समूह बनाकर सोयानट, बाजरे, मक्के के उत्पाद बनाए और प्रदर्शनियों में बेचे, जिससे महिलाएँ आत्मनिर्भर बनीं। ये महिलाएँ समाज के लिए प्रेरणास्रोत हो सकती हैं।

यह किताब प्रतियोगी छात्रों और ग्राम विकास से संबंधित कोर्स कर रहे छात्रों के लिए एक उपयोगी पुस्तक है।

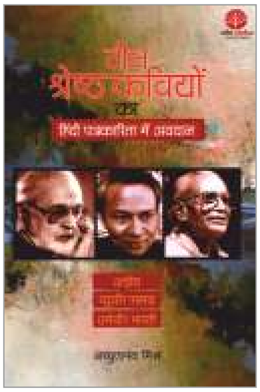

# तीन श्रेष्ठ कवियों का हिंदी पत्रकारिता में अवदान

*समीक्षक* : **मोहन शर्मा**
*लेखक* : **अच्युतानंद मिश्र**
*प्रकाशक* : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नई दिल्ली-110070
*पृष्ठ* : 172
*मूल्य* : रु. 225/-

साहित्य और पत्रकारिता के अटूट संबंध की सुंदरता सदियों से बरकरार है। महावीर प्रसाद द्विवेदी, माखनलाल चतुर्वेदी, बालमुकुंद गुप्त, गणेश शंकर विद्यार्थी, बाबूराव विष्णु पराड़कर, भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रेमचंद जैसे साहित्य के प्रति समर्पित समाजसुधारकों ने कथा-कहानी, कविताओं, नाटकों, निबंधों आदि विधाओं के माध्यम से न केवल सामाजिक रूढ़ियों से लोगों को उबरने में सहायता की, बल्कि उन्होंने तत्कालीन भारत को नई ऊर्जा और उमंग से भरा, ताकि भारतवासी अंतर्मन में छिपी देशप्रेम की ताकत को समझ सकें, साथ ही, उन साहित्यकारों, जिन्हें कलम की ताकत का वीर कहा जाए, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी, उन्होंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में अपनी लेखनी का जादू बिखेरकर पत्रकारिता को भी नई उड़ान दी और एक सशक्त पत्रकार-संपादक की भूमिका में भारत की तात्कालिक परिस्थितियों को जन-जन के समक्ष बेबाक तरीके से रखा।

अच्युतानंद मिश्र की 'तीन श्रेष्ठ कवियों का हिंदी पत्रकारिता में अवदान' पुस्तक में साहित्य और पत्रकारिता, दोनों में अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय', रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती—इन तीन कवियों के अतुलनीय योगदान पर प्रकाश डाला गया है। इसकी लेखन-शैली एक साहित्य इतिहास की कहानी-सी लगती है, जिसमें छह अध्यायों के तार एक-दूसरे से जुड़े हैं। अज्ञेय जी, रघुवीर सहाय और भारती जी को एक बेबाक पत्रकार बनने की प्रेरणा साहित्य से मिली। उन्होंने समय के अनुरूप अपनी कलम की ताकत को समझा और एक सजग पत्रकार-संपादक के रूप में सामाजिक सरोकारों के प्रति जनता को जागरूक करने की भूमिका निभाने में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया।

अच्युतानंद मिश्र जी ने अपनी इस पुस्तक की रचना एक शोध परियोजना के रूप में की थी। उन्हें कृष्णबिहारी मिश्र जी से प्रेरणा मिली और उन्होंने अपने शोध कार्य को सुधी पाठकों के समक्ष रखा। उन्होंने पुस्तक का आरंभ कृष्णबिहारी मिश्र जी की हस्तलिखित प्रस्तावना से किया है, जो लेखक का प्रेरणा स्रोत बनने का प्रमाण है। पुस्तक में लेखक ने साहित्य और पत्रकारिता में अपना अहम योगदान देने वाले तीनों कवियों के उदाहरण से स्पष्ट किया है कि स्वाधीन भारत में भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता को व्यवस्था विरोध की सशक्त भाषा, भाषा के संस्कार, सरोकारों के लिए संघर्ष और वैचारिक आधार देने का काम भी ऐसे संपादक-पत्रकारों ने किया था, जो मूलतः साहित्य से पत्रकारिता में आए थे। उन्होंने साहित्य के साथ-साथ पत्रकारिता को भी अपनी अभिव्यक्ति का साधन बनाया।

जैसा कि ऊपर कहा गया था कि यह पुस्तक अच्युतानंद मिश्र के शोध कार्य का परिणाम है। उन्होंने इस दस्तावेज में अज्ञेय, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती के पत्रकारीय लेखन, उनको केंद्र में रखकर लिखी गई पुस्तकों, उस दौर के साक्षी रहे साहित्य चिंतकों, विद्वानों, पत्रकारिता के सहयोगियों द्वारा संपादक के रूप में उनका वस्तुपरक आकलन भी शामिल करने की कोशिश की है।

लेखक ने पहले अध्याय में बड़े ही सरल ढंग से तीनों संपादकों की वैचारिक अंतर्दृष्टि को प्रस्तुत किया है। उन्होंने बताया है कि तीनों संपादकों में बहुत कुछ समान था और कई वैचारिक अंतर्विरोध भी थे। तीनों पर स्वतंत्रता पूर्व के संपादकों की भी छाप थी। दूसरे अध्याय में लेखक ने सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन की कहानियों के सफर, पत्रकारिता में उनके कदम और उनके संपादक बनने की कहानी को बयाँ किया है। इसके एक अंश में रघुवीर सहाय की दृष्टि में अज्ञेय पर विचार रखे गए हैं। लेखक के अनुसार, अज्ञेय की पत्रकारिता का आकलन उनकी व्यापक साहित्यिक दृष्टि को समझे बिना नहीं किया जा सकता। हिंदी के प्रति उनके संपूर्ण योगदान को अलग-अलग करके देखना सचमुच जरूरी है।

लेखक रघुवीर सहाय को पत्रकारिता में नई ऊर्जा देने का निमित्त मानते हैं। लेखक कहते हैं कि पत्रकारिता में अपनी पहचान बनाने की कीमत सहाय जी को कई बार और कई रूपों में चुकानी पड़ी थी। अपमान सहकर भी उन्होंने हिंदी पत्रकारों का मान बढ़ाया था। वे जितने गंभीर साहित्य में थे उतने ही सजग पत्रकारिता में भी थे। बेलौस, दो टूक और सीधी चोट करने वाली उनकी लेखन-शैली औरों से अलग थी।

प्रस्तुत पुस्तक में अच्युतानंद मिश्र जी ने तीनों साहित्यकारों के हिंदी पत्रकारिता में अवदान को अतुलनीय ढंग से प्रस्तुत किया है। यह पुस्तक उन युवाओं के लिए भी प्रेरणा स्रोत है, जो साहित्य की विविध विधाओं में अपनी लेखनी का रंग बिखेर रहे हैं। वे हिंदी पत्रकारिता को भी अपने लेखन-कौशल का हिस्सा बना सकते हैं और भाषा के प्रति सजगता को बरकरार रखने में अपना योगदान दे सकते हैं।

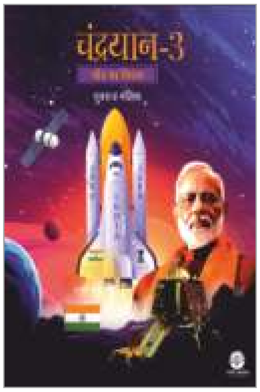

## चंद्रयान-3

### चाँद पर तिरंगा

*समीक्षक* : **आलोक कुमार शुक्ल**

*लेखक* : **युवराज मलिक**

*प्रकाशक* : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नई दिल्ली-110070

*पृष्ठ* : 54

*मूल्य* : रु. 130/-

भारतीय साहित्य में बच्चों को विज्ञान, देशभक्ति और मानवीय मूल्यों से जोड़ने वाले साहित्य की संख्या अपेक्षाकृत कम रही है। इस संदर्भ में युवराज मलिक द्वारा लिखित 'चंद्रयान-3 : चाँद पर तिरंगा' पुस्तक अत्यंत सराहनीय और महत्वपूर्ण रचना है। यह पुस्तक केवल चंद्रयान मिशन का तकनीकी विवरण ही नहीं देती, बल्कि इसे एक रोचक कहानी के रूप में भी प्रस्तुत करती है, ताकि छोटे बच्चे भी आसानी से समझ सकें और प्रेरणा ले सकें।

पुस्तक की कहानी 10 वर्षीय बालक वीर और उसके दादा जी के संवाद पर आधारित है। वीर स्वभाव से जिज्ञासु और कल्पनाशील है। वह चाँद, अंतरिक्ष और वैज्ञानिक प्रगति के बारे में जानना चाहता है। दादा जी उसकी जिज्ञासाओं को शांत करते हुए चंद्रयान-3 की ऐतिहासिक सफलता की पूरी यात्रा सुनाते हैं।

कहानी में बताया गया है कि कैसे 23 अगस्त, 2023 को भारत ने चाँद के दक्षिणी ध्रुव पर अपना यान उतारा और अंतरिक्ष इतिहास में नया अध्याय लिखा। दादा जी वीर को बताते हैं कि चंद्रयान-2 की असफलता से वैज्ञानिकों ने हिम्मत नहीं हारी, बल्कि उससे सबक लेकर चंद्रयान-3 को सफलता तक पहुँचाया और केवल चार वर्षों में दुनिया के सामने एक मिसाल कायम की। पुस्तक में विक्रम लैंडर, प्रज्ञान रोवर, तिरंगा पॉइंट और शिव शक्ति पॉइंट जैसे महत्वपूर्ण तथ्यों का भी उल्लेख है।

पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें वैज्ञानिक तथ्यों को इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि बच्चे भी आसानी से समझ सकें। कठिन तकनीकी शब्दों को संवाद-शैली और उदाहरणों के माध्यम से सरल बनाया गया है।

लेखक ने चंद्रयान-3 की सफलता को केवल वैज्ञानिक उपलब्धि के रूप में नहीं, बल्कि भारत के आत्मगौरव और संकल्प का प्रतीक बताया है। वीर और उसके दादा जी के संवादों में भारतीय संस्कृति और वैज्ञानिक परंपरा पर गर्व झलकता है। दादा जी के किस्से और वीर की जिज्ञासाएँ बच्चों को बाँधे रखती हैं। इससे पाठक विज्ञान को कहानी के रूप में पढ़ते हैं और उनकी रुचि बनी रहती है। साथ ही, यह पुस्तक संदेश देती है कि असफलता अंत नहीं होती, बल्कि सफलता की पहली सीढ़ी होती है।

दादा जी कहानी सुनाते हुए बताते हैं कि भारतीय सभ्यता में अंतरिक्ष और खगोल विज्ञान का उल्लेख प्राचीन समय से मिलता है। आर्यभट्ट, नालंदा विश्वविद्यालय और पुष्पक विमान जैसे उदाहरणों से यह दिखाया गया है कि भारत का अंतरिक्ष से जुड़ा ज्ञान हजारों वर्षों पुराना है।

यह पुस्तक मुख्यतः बच्चों और किशोर पाठकों के लिए लिखी गई है, अतः उच्च स्तरीय वैज्ञानिक विश्लेषण की अपेक्षा नहीं रखी जा सकती है। कहीं-कहीं पर वैज्ञानिक शब्दों का प्रयोग हुआ है, लेकिन उनका अर्थ तुरंत स्पष्ट कर दिया गया है। इससे यह पुस्तक न केवल बच्चों के लिए, बल्कि सामान्य पाठकों के लिए भी रोचक और उपयोगी बन गई है।

इस पुस्तक की खास बात यह है कि इसे पढ़ते हुए बच्चे निरंतर जिज्ञासु बने रहते हैं। वे आगे क्या, कैसे और क्यों के प्रति सतत उत्सुकता बनाए रखते हैं।

यों तो अंतरिक्ष विज्ञान के क्षेत्र में भारत ने स्वाधीनता के प्रथम तीन दशकों में ही लंबी छलाँग लगा ली थी, जब वर्ष 1975 में भारत ने अपना पहला उपग्रह 'आर्यभट्ट' लॉन्च किया था, किंतु विगत एक दशक में हमारे अंतरिक्ष कार्यक्रम बहुत तेजी से आगे बढ़े हैं। चंद्रयान की प्रारंभिक असफलताओं के बाद वर्ष 2023 में चंद्रयान-3 ने जो सफलता का शिखर छुआ, उसने भारत को एकदम से विकसित देशों के अंतरिक्ष अभियानों के समानांतर ला खड़ा कर दिया। वर्ष 2014 में मंगलयान की सफलता के बाद अब गगनयान की तैयारी भी प्रगति पर है। कहना न होगा कि यह पुस्तक बच्चों और किशोरों में भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रमों के प्रति रुचि जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी।

इस पुस्तक से शिक्षा और प्रेरणा लेकर छात्र-छात्राएँ भारत की अंतरिक्ष उपलब्धियों से परिचित होंगे। असफलता से सीखने का महत्व समझकर विज्ञान के क्षेत्र में कॅरियर बनाने के लिए प्रेरित होंगे। वे देशभक्ति और वैज्ञानिक दृष्टिकोण को साथ लेकर आगे बढ़ सकेंगे। लेखक ने इस पुस्तक के माध्यम से बच्चों और युवाओं को यह सिखाया है कि कठिनाइयाँ जीवन का हिस्सा हैं, परंतु धैर्य, परिश्रम और दृढ़ संकल्प से उन्हें पार किया जा सकता है। भारत केवल तकनीकी दृष्टि से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से भी गौरवशाली देश है। विज्ञान केवल प्रयोगशालाओं तक सीमित नहीं है, बल्कि यह हर बच्चे के सपनों और आकांक्षाओं से जुड़ा है।

मेरा मानना है कि हर भारतीय को इस पुस्तक को पढ़ना चाहिए, क्योंकि यह हमें केवल चंद्रयान-3 की सफलता की कहानी नहीं सुनाती, बल्कि यह बताती है कि भारत का भविष्य विज्ञान और संकल्प की रोशनी से जगमगाने वाला है।

# हम हो गये स्वयं खुशबूघर

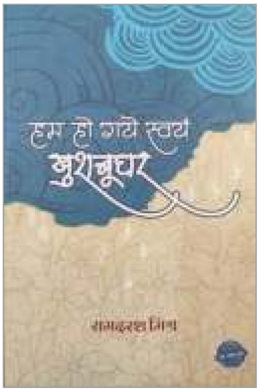


*समीक्षक* : **दीपक मंजुल**
*लेखक* : **रामदरश मिश्र**
*प्रकाशक* : सर्वभाषा ट्रस्ट, उत्तम नगर, नई दिल्ली
*पृष्ठ* : 104
*मूल्य* : रु. 220/-

साहित्य की कई-कई विधाओं में लिखने वाले अनथक यायावर शतायु रामदरश मिश्र यों तो दसाधिक विधा-आँगनों के नियमित यात्री रहे हैं, किंतु कविताओं में उनकी भाषा अमलतास-सी खिलती है, हरसिंगार-सी झरती है और मोगरा-सी महकती है। विश्वास न हो तो उनकी नवीनतम कृति, 'हम हो गये स्वयं खुशबूघर' पढ़ जाइए, जो उनकी चयनित चुनिंदा प्रेम कविताओं का संकलन है। कहते हैं, किसी भी लेखक का लेखन पहले-पहल कविताओं में उतरता है, कविताओं में भी विशेषकर प्रेम कविताओं में। पंत ने कहा भी है—'वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान; निकलकर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।'

जहाँ प्रेम है, वहाँ वियोग भी है, जहाँ वियोग है, वहाँ आँसू भी है। इसलिए प्रेम को ही कविता का प्रस्थान बिंदु, या फिर, गंगोत्री कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। आयु का एक शतक पूर्ण कर चुके आयुष्मान लेखक, पद्मश्री से सम्मानित रामदरश मिश्र ने अपनी दीर्घ लेखन-यात्रा में पथ के गीत गाते हुए, बैरंग-बेनाम चिट्ठियाँ बाँचते हुए, धूप के टुकड़े से आग की हँसी तक लिखा है। उनके जीवन का हर लमहा बोलता रहा, लिखता रहा, गुनगुनाता रहा। आज वे अपने प्रिय गीत गाते हुए शब्द-सेतु पर हौले-हौले चलते हुए सौ के पार उतर चुके हैं, पर थके नहीं हैं।

रामदरश जी की प्रस्तुत कविताओं को पढ़ते हुए यों लगता है, मानो ये सुबह की धूप में नहायी हुई कविताएँ हैं। कवि की प्रेम कविताओं की हर पंक्ति में मानो फूल महमह करते हैं, गंधिल स्मृतियों की नदी में नायिका की रूप की चूड़ियाँ खनकती हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मिश्र जी मूलतः नॉस्टेल्जिया के कवि हैं।

दीर्घवय कवि की स्मृतियाँ भी शतायु हो चली हैं। ऐसे में, कवि अपने जीवन की अनेक खट्टी-मीठी स्मृतियों का भार वहन करते हुए चलता है। लगता है, मानो जमा हुआ वक्त पिघलता है इनकी कविताओं में। यदि सुखद स्मृतियाँ हरियाली बन विहँसती हैं सतरों-सतरों में, तो किंचित दुखद स्मृतियाँ कचोटती भी हैं कतरों-कतरों में।

कवि की प्रेम कविताओं में हरियालियाँ हँसती हैं, मौन मधुमास करता है, चाँदनी रातभर मुस्कुराती है, पुरवाई मस्ती में गाती है, चिड़ियाँ चहचहाती हैं, फूल गमगम गमकते हैं। इन कविताओं में फूल हैं, पंछी हैं, नदियाँ हैं, धूप-हवा-रौशनी है, खेत-घर-आँगन है, रंग है रूप है रौशनी है, छंद है राग है लय है ताल है, रूप-रंग-गंध है, पुरवाई है, तनहाई है, नींद है सपने हैं आँसू हैं।

खुश हूँ कि आज उनका यों दीदार हो गया,
यह दिन तो मेरे वास्ते त्योहार हो गया।

'कोलाहल के महासागर में, सन्नाटे का द्वीप मैं'—स्वयं के बारे में ऐसा कहने वाला कवि जब प्रेम कविताएँ लिखता है तो पचहत्तर की होने पर अपनी जीवन-संगिनी, सरस्वती पर लिखने से नहीं चूकता।

शरद में हँसती हुई नदी
शीत में/अलाव की खिलखिलाती हुई आँच
और वसंत में/अरे, वसंत में तो तुम स्वयं वसंत बन जाती रहीं...

प्रस्तुत कविता-संग्रह की अधिकांश कविताएँ यों तो प्रेममूलक हैं, किंतु कुछ प्रकृतिमूलक भी हैं। वैसे भी, जहाँ प्रेम है, वहाँ प्रकृति भी तो रहती ही है। कवि की प्रेम-स्मृति के विस्तृत फलक में असमय दिवंगत हो गए पुत्र हेमंत हैं तो पचहत्तर-पार के बाद दिवंगत हुई प्राणप्रिया पत्नी सरस्वती भी। पुत्री स्मिता के प्रति उनके जन्मदिन के बहाने उन्हें आशीष देती एक कविता भी इस संग्रह में है। और कवि की स्वप्न-नायिका पर तो जो लेखनी चली है उससे तो मानो, पूरी पुस्तक ही सावन और वसंत की मधुरागिनी बन गई है। नारी मुक्ति पर भी एक-दो कविताएँ हैं।

इन कविताओं में कवि के छोटे-छोटे दुख हैं तो हाँफते-काँपते उनके कुछ सुख भी, टूटे-दरके कुछ सपने हैं तो कुछ अपने भी हैं।

प्रस्तुत संग्रह की कविताओं की भाषा पर यदि बात न की जाए तो समीक्षा अपूर्ण-सी ही रहेगी। यदि यह कहा जाए कि कवि के पास उनकी अपनी गढ़ी और निर्मित ओस की बूँद-सी तरोताजा और फूल-सी महमह भाषा है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। उनके द्वारा रचित रूपक और प्रतीक इतने मनमोहक और अभिनव हैं कि वे बरबस पाठक को बाँध-से लेते हैं, उन्हें विस्मित भी करते हैं। एकाध दृष्टांत देखें—

'क्वाँरी रात खिलखिलाती थी /कली-कली महमहाती थी'
'झिलमिल-झिलमिल काँप रहा है /लहरों में संध्या का तारा'
'कमरे में झरझराकर बरस पड़ी
सुबह की नहायी हुई धूप'
'महकती बूँद-सा चूता हुआ लमहा-लमहा'

कहना न होगा कि कवि के पास मौसम की पहली बारिश-सी महमह करती सोंधी भाषा है, सुबह के ओस की बूँद में नहायी शैली है और बिलकुल घर-आँगन, पास-परिवेश के विषय हैं, जो किसी भी सहृदय पाठक के मन-नदी में सहज ही उतर जाते हैं।

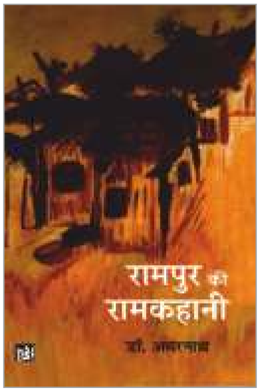


*समीक्षक* : **सुमन बाजपेयी**

*लेखक* : **डॉ. अमरनाथ**

*प्रकाशक* : लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

*पृष्ठ* : 182

*मूल्य* : रु. 350/-

## रामपुर की रामकहानी

(संस्मरण)

साहित्य जगत को 'हिंदी आलोचना का आलोचनात्मक इतिहास', 'हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली', 'आचार्य रामचंद्र शुक्ल और परवर्ती आलोचना' जैसी कृतियाँ देने वाले डॉ. अमरनाथ द्वारा लिखी समीक्ष्य पुस्तक 'रामपुर की रामकहानी' एक संस्मरणात्मक पुस्तक है। पुस्तक में रामपुर नामक एक गाँव के माध्यम से बदलते भारत और वैश्वीकरण के बाद हो रहे विकास को अपने अनुभवों के साथ जोड़ते हुए उन्होंने बहुत ही सरस भाषा में प्रस्तुत किया है।

गाँव के इतिहास, जीवन, संस्कृति, रिश्तों, उत्सवों और खट्टे-मीठे प्रसंगों का फलक इस पुस्तक में किसी कैनवास पर उकेरी गई पेंटिंग की तरह है। सब कुछ इतना सजीव है कि पढ़ते समय लगता है, जैसे आँखों के सामने घट रहा है।

60 वर्षों के इतिहास को समेटे इस पुस्तक की पृष्ठभूमि में लेखक लिखते हैं, 'अपने बदलते गाँव का चित्र मेरे मानस-पटल पर बराबर तैरता रहता है। कभी मुझे यह विकास लगता है तो कभी बदलते भारत की व्यथा कथा।'

पुस्तक में 23 अध्याय हैं—'पुरनका टोला और सदानीरा', 'पटरी पर पढ़ाई', 'भउजी, मुल्ला की तावीज', 'मममहर का मोह', 'कउड़ा', 'कमली के विवाह में ड्रामा', 'माई जब जिंदा लौट आई', 'जड्डू पंडित का कुनबा', 'माई', 'बाऊजी', 'रामपुर का दाम्पत्य', आदि।

आत्मकथात्मक शैली में लिखी यह पुस्तक लेखक के व्यक्तिगत अनुभवों और यादों पर आधारित है। यह गाँव में होती सामाजिक-आर्थिक विषमता की बात करती है। पूरी ईमानदारी से 'जो घटा, जैसे घटा' की तर्ज पर लिखा गया है। कह सकते हैं इस पुस्तक में छह दशकों का क्रमिक और प्रामाणिक इतिहास रोचक संवादों और प्रसंगों के माध्यम से चित्रित किया गया है। कहीं बनावट या नाटकीयता नहीं है। वह 'पुरनका टोला और सदानीरा' अध्याय में लिखते हैं, 'कितनी पुरानी है रामपुर की बस्ती यह बताना कठिन है। इसके बगल में सदानीरा सदियों से बह रही है। पिछले कुछ वर्षों से वह गर्मियों में सिकुड़ जाती है। धार क्षीण हो जाती है। सूखने के लिए तो 'सरस्वती' भी सूख गई। फिर इसकी बिसात ही क्या है? लेकिन कुछ सौ वर्ष पहले यह पूरा क्षेत्र वनाच्छादित था। निस्संदेह, जंगल कटने के बाद ही रामपुर बसा होगा।' रामपुर के प्रति लेखक की संवेदना और दर्द, दोनों ही परिलक्षित होते हैं।

पुस्तक की रोचकता में वृद्धि करते हैं लोक से लगभग गायब होते पारंपरिक संस्कार गीत—फगुआ, कजरी, सोहर, झूमर, चौताल, और यहाँ तक कि विवाह या अन्य समारोहों में महिलाओं द्वारा गाई जाने वाली गालियाँ। 'भउजी' नामक अध्याय में लेखक लिखते हैं, 'जँतसार का एक मार्मिक गीत मैंने भउजी के कंठ से सुना है, जिसकी पंक्तियाँ स्मृति में बसी हुई हैं—'झीनी-झीनी गेहुँआ हो या बाँस के चँगेलिया हो, ननदी भउजिया गेहुँआ पीसेली हो राम।' लोक-साहित्य की अमूल्य धरोहर को खो देने की पीड़ा उनकी लेखनी में जगह-जगह दिखती है। 'कउड़ा', जिसका अर्थ अलाव होता है, उसके बारे में बताते हुए वह मानते हैं कि मशीनीकरण व्यवस्था ने कउड़ा की संस्कृति को अपने हित में खत्म कर दिया। 'अब लोग जाड़े में ठिठुरते हैं, दिन चढ़ जाने तक अपने बिस्तरों में दुबके रहते हैं और ठंड से बीमार होकर मरते भी हैं, क्योंकि ठंड से बचने के अचूक साधन कउड़ा को वे बचा न सके।' पुरानी व्यवस्थाएँ जितनी सुगम थीं उतनी ही असरदार भी, लेकिन परिवर्तन की बयार ने संस्कृति के साथ-साथ उनको भी लील लिया।

'अथ यज्ञोपवीत-भंजन कथा' हो या 'कृषि संस्कृति की समाधि', हर संस्मरण समय के खंजर की नोक से निकला लगता है। 'रामपुर का दाम्पत्य' अध्याय युवा मन का आईना है, जिसमें डॉ. अमरनाथ मानते हैं कि प्रेम विवाह ही जीवन साथी चुनने का सर्वाधिक उपयुक्त तरीका है। 'जाति, जाति में जाति' अध्याय में वर्ण व्यवस्था के वर्तमान रूप को आईना दिखाया गया है। लेखक इस बात को स्वीकारते हैं कि आज गाँवों और शहरों में दलित और सवर्ण का स्तर भेद समाप्त हो चुका है। 'सामाजिक हैसियत के निर्धारण का पैमाना सिर्फ आर्थिक है और इस पैमाने पर गाँव के सवर्ण कहीं नहीं टिकते। उनकी दशा आज पहले के दलितों जैसी हो चुकी है।' और अंतिम अध्याय में वह चंद बातें कलकत्ते की भी करते हैं, क्योंकि अपने गाँव से यात्रा शुरू करके गोरखपुर के बाद वह कोलकाता जैसे महानगर में जाकर बस गए थे।

हालाँकि, लेखक इसे अपनी आत्मकथा नहीं मानते हैं, लेकिन यह स्वीकारते हैं कि यह सत्य कथा है। लेकिन गाँव की भाषा को सहेजते हुए जिस प्रकार उन्होंने यह गद्य लेखन किया है, वह उपन्यास जैसा ही रस देता है।

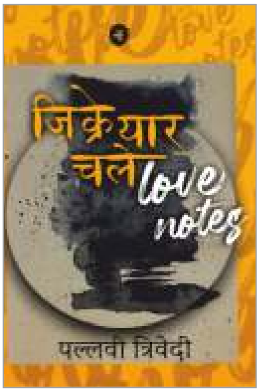


*समीक्षक* : **जनार्दन मिश्र**

*लेखिका* : **पल्लवी त्रिवेदी**

*प्रकाशक* : सार्थक, राजकमल प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली

*पृष्ठ* : 175

*मूल्य* : रु. 250/-

## ज़िक्रे यार चले
## love notes

दो भाषाओं एवं दो लिपियों में लिखी गई किसी पुस्तक का शीर्षक आज से पहले मुझे देखने को नहीं मिला था, पर जब पल्लवी त्रिवेदी की लिखी पुस्तक 'जिक्रे यार चले love notes' मेरे पास समीक्षा के लिए आई, तो पहले तो थोड़ा आश्चर्य-सा लगा, पर सोचा कि इससे पहले न देखने का अभिप्राय यह तो नहीं कि ऐसे शीर्षक की यह पहली पुस्तक है। हो सकता है इस तरह की पुस्तक पहले भी आई हो, पर उसकी जानकारी मुझे न हो।

कई पुस्तकों की लेखिका, सराहनीय कार्य के लिए 'राष्ट्रपति पुलिस पदक' से सम्मानित पल्लवी त्रिवेदी वर्तमान में आर्थिक अपराध प्रकोष्ठ में ए.आई.जी. के रूप में पदस्थ हैं। इस पुस्तक में लेखिका ने अड़तालीस तरह की प्रेम कथाओं के कुछ लम्हों का बयान किया है, जिसमें प्रेम के अनगिनत रंगों की छटा देखने को मिलती है।

पहली प्रेम कथा का शीर्षक है—'ओ हंसिनी—कहाँ उड़ चली।' इस कथा में दादी और पोती के बीच अपने-अपने प्रेमियों की बातें एक-दूसरे से बताने का मर्मस्पर्शी चित्रण है। एक-दूसरे से बातें करते समय उनके चेहरे पर झिलमिलाती प्रेम की आभा उम्र की सीमा रेखा को मिटा देती है।

'छत पे आ जाते थे कपड़ों का बहाना कर के' शीर्षक के अंतर्गत अस्सी का दशक, प्रेम के मामले में कैसा था, उसका जीवंत चित्रण लेखिका ने प्रस्तुत किया है। छोटे-छोटे शहरों एवं बड़े शहरों की अनधिकृत कॉलोनियों में आज की तरह बिजली-पानी की सुविधा नहीं थी। शाम होते ही किशोरवय के लड़के, लड़कियाँ पढ़ने के बहाने छत पर चढ़ जाते थे और इशारों में एक-दूसरे से अपना प्रेम प्रदर्शन करते थे। मुहब्बत की किताब का यही फायदा है कि उसे पढ़ने के लिए उजाले का होना नितांत गैर-जरूरी है। उस दौर के लोग आज भी अपनी-अपनी छत पर चढ़कर उस दौर के प्रेम को जी लेते हैं। उन दिनों एक-दूसरे की उँगलियों के स्पर्श से ही पूरा शरीर रोमांचित हो जाता था।

'अलमारी से खत उसके पुराने निकल आए' शीर्षक के अंतर्गत लेखिका ने एक ऐसी प्रेमकथा को दर्शाया है, जिसे पढ़-सुनकर खूबसूरत दिनों की याद आ जाती है। ऐसे तो प्रेम किसी उम्र में किसी से भी हो सकता है, पर किशोरवय के प्रेम का दर्द बड़ा मीठा होता है। यदि वे क्लासमेट हों, तो ग्रेजुएट होते-होते एक-दूसरे को जीवनसाथी के रूप में देखने लगते हैं, पर परिस्थितियाँ एक जैसी बराबर नहीं रहतीं। ऐसे में किसी-न-किसी कारण से एक-दूसरे से अलग होने पर जीवनभर प्रेम की हूक मन को बेचैन किए रहती है। प्रेम किसी फलसफे को नहीं मानता, धैर्य नाम की किसी शै को नहीं पहचानता, मुहब्बत का मतलब है एक अनबुझ-सी पहेली, मिलने की आतुरता, इंतजार, वादे, सरप्राइज, उपहार, मन्नतें, गलबहियाँ, रूठना, मनाना और हजारों-हजार चुंबन। वो खास उम्र, जब प्रेमी दिन-रात एक खुशबू बनकर दिलोदिमाग को महकाए रहते हैं।

'बरसो रे कारे बदरवा... हिया में बरसो' शीर्षक के अंतर्गत लेखिका ने एक ऐसे प्रेमी जोड़े के माध्यम से प्रेम कथा को बुना है, जो शास्त्रीय संगीत के विद्यार्थी हैं। संगीत जितनी अच्छी चीज है, उतनी बला भी...ठीक इश्क की तरह। जहाँ सुर हो वहाँ प्रीत न हो, यह असंभव है। प्रिय के चेहरे की हल्की-सी जुम्बिश भी दिल का राज बता दिया करती है।

'जहाँ कुछ लोग दीवाने बने हैं बड़े दिलचस्प अफसाने बने हैं' शीर्षक के अंतर्गत 2020 के कोरोना काल के जेठ महीना का वह डरावना कालखंड, जब एक प्रेमी जोड़ा 1,200 किलोमीटर की दूरी पर रहते हुए एक-दूसरे से मिलने के लिए छटपटा रहा है, का मर्मस्पर्शी चित्रण है। यह प्रेमकथा मजदूर तबके की है। उन्हें गाँव में रहकर भी मजदूरी ही करनी है; इसलिए कुछ ज्यादा मजदूरी पाने की लालसा में वे घर से दूर 'परदेस' (देहाती बोल-चाल में गाँव से दूर जगह को 'परदेस' कहकर ही संबोधित किया जाता है) चले जाते है। गाँव से दूर मजदूरी करने वाले अपने प्रेमी की हालत मोबाइल की स्क्रीन पर देखकर उसकी प्रेमिका बेचैन हो जाती है। ठेकेदार के अमानवीय व्यवहार से मजदूर की हालत भी बद-से-बदतर होती जा रही थी। ऐसे में भूखे-प्यासे अपने गाँव-घर पैदल जाने वालों की हालत मोबाइल, टीवी की स्क्रीन पर देखकर संवेदनहीन व्यक्ति का दिल भी पसीज जाता था। इस शीर्षक के अंतर्गत प्रेम की गहरी अनुभूति को बड़े ही मार्मिक ढंग से पिरोया गया है। विकट से विकट परिस्थिति में भी शाश्वत प्रेम अँधेरे का दीपक बन जाता है।

इस पुस्तक में अनेक जाने-माने गीतकारों, कवियों, शायरों—मजरूह सुल्तानपुरी, साहिर लुधियानवी, गुलजार, ज्ञानेन्द्रपति, मिर्ज़ा ग़ालिब, कैफ़ी आज़मी, फ़ैज़ अहमद फ़ैज़, गोपालदास नीरज, आदि के गीतों, कविताओं, शेरों के मुखड़े को शीर्षक के रूप में प्रस्तुत कर उसके अंतर्गत लेखिका ने प्रेम के अनेक पक्षों को दर्शाया है।

प्रेम शाश्वत है, पर काल एवं परिस्थितियों के चलते उसके स्वरूप में परिवर्तन होना स्वभाविक है। लेखिका ने इस पुस्तक में प्रेम के अनगिनत रंगों को दर्शाया है।

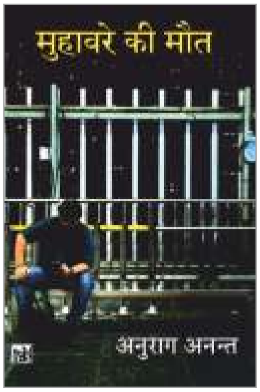


*समीक्षक* : **उज्ज्वल शुक्ल**

*लेखक* : **अनुराग अनंत**

*प्रकाशक* : लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

*पृष्ठ* : 159

*मूल्य* : रु. 299/-

# मुहावरे की मौत

पुराने पढ़े गए अखबारों के ढेर में एक और अखबार अपनी तमाम खबरों के साथ जा मिलता है, इस तरह खबरों की मृत्यु होती है और इन खबरों के प्रेत अनेक टैबू से जुड़ते-टूटते बेचैन अपना शरीर तलाश करते हैं। अनुराग अनंत की कहानियाँ उन्हें एक शरीर देती हैं। खबरों से निकली कहानियों में सूचनात्मक विवरण होने के खतरे को लेखक हर कहानी के पहले ही पैराग्राफ में दूर कर लेता है।

ये कहानियाँ समाज के किसी टूटते किनारे को किसी नीम के पेड़ पर बैठे भुंइया बाबा की तरह बैठकर देखती हैं। इन कहानियों की राजनीतिक चेतना कथानक पर वृक्षों और खिड़कियों की ओट से लगातार नजरें गड़ाए रहता है। बाजार और सांप्रदायिकता के साथ 21वीं सदी में हो रहे बड़े और तीव्र बदलाव अपने साथ अनेक प्रश्न लेकर आते हैं और अपराध के इर्द-गिर्द पूरा कथानक नाचता है।

लेखक अपनी कहानियों में समाज के क्रूर यथार्थ को उघाड़ते हुए किसी पात्र के भीतर आवाजाही करता है। इन कहानियों का यथार्थ समाज की फुसफुसाहटों में तैरता है। विवाहेतर संबंधों, हत्याओं, बलात्कारों, प्रेम में प्रेम से इतर की सामाजिक धारणाओं और अनेक पूर्वाग्रहों के साथ बाल-मन पर पड़ी लंबी छाप से कहानियाँ बनती हैं। नैतिकता और अनैतिकता के बीच की रेखा इन कहानियों को दूर से देखती हैं। यूँ तो 'ग्रांड इवेंट' में मुख्यतः विवाहेतर संबंध और सांप्रदायिकता, अवैध संतान की समस्या एक आवरण का कार्य करती है, लेकिन इस कहानी का कहन इसे उससे भी आगे ले जाने का प्रयास करता है।

ये कहानी संवेदना की धीमी मौत और सूचना में से तथ्य छाँटने और उत्तर-सत्य हो जाने की कहानी है। "हम जो कुछ भी अतीत मानते हैं, सत्य समझते हैं वह कहानियों से बना है। इन कहानियों ने ही हमारा यथार्थ बुना है। जैसे कि मैंने पहले ही कहा 'जरूरी नहीं जो जैसा बताया गया है, वैसा ही हुआ हो।'" कहानी का शिल्प कथानक के मोड़ पर नैरेटर के साथ पाठक को रोकता है। हर बार कथाकार किसी-न-किसी प्रश्न के साथ पाठक को छोड़ता है। मसलन—क्या दंगे और हत्याओं के विवरण में इंसानों की दिलचस्पी इतनी बढ़ रही है कि वे मौत पर दुःख प्रकट करने से अधिक उनकी खबरों को जानने में रुचि रखते हैं? हिंसा कहाँ से शुरू होती है और कहाँ तक जा सकती है? किसी एक घटना को कितने तरीके से कहा जा सकता है और कितने भयानक सत्यों का समुच्चय एक खबर होती है? कथाकार कहानी में शोषक और शोषित के बीच की बाइनरी को दिखाते हुए उसके इर्द-गिर्द चल रही घटनाओं को बुनता है, जिनके केंद्र में कोई सामाजिक वर्ग नहीं होता, बल्कि परिस्थितियाँ होती हैं। उन परिस्थितियों की निर्मिति के पीछे अवश्य ही वर्ग-संघर्ष चलता है, लेकिन इन कहानियों में वह अंतर्प्रवाहित होती रहती है मुखर रूप से परिस्थितियाँ और उनमें मनुष्य का चुनाव बोलता है।

अनुराग अनंत इन कहानियों में संवेदना की तीव्रता बढ़ाने के लिए ऐतिहासिक घटनाओं को दुहराते हैं, मानो वे मात्र घटनाएँ न हों, बल्कि भारतीयों के विकास क्रम में वे उसकी मानसिकता को बदलने वाले महत्वपूर्ण पड़ाव हों। अपनी कहानियों में वे जो आवाजाही का मायाजाल रचते हैं, वह एक राजनीतिक-साहित्यिक विक्षिप्तता की शैली भी धारण कर लेती है, जिसमें कहानीकार को कुछ अधिक कहने की छूट भी मिलती है और इसी के साथ ये छूट एक खाली मैदान की भाँति भी हो सकती है, जहाँ कोई भी यथार्थ-काल्पनिक-ऐतिहासिक घटना, संदर्भ एवं मिथक आवाजाही कर सकते हैं। ये विक्षिप्तता कहानियों के औचित्य को पूर्ण करता है।

'पागल के रोम-रोम में दिमाग उग आता है।' (*त्रासदी का सिद्धांत*) 'त्रासदी का सिद्धांत' जैसी छोटी कहानी भी अपने भीतर अनेक मान्यताओं और मिथकीय संदर्भों को समाहित किये हुए है। एक क्षण विशेष में पात्र के अंतर्द्वंद्व और उसकी मानसिक दशा को चित्रित करते हुए यथार्थ की सीमा पार कर विनोद कुमार शुक्ल की भाषा में दूर से उस यथार्थ को देखती है।

'रजस्वला' कहानी इस संग्रह की अंतिम कहानी है। यह कहानी अपने पूर्ववर्ती कहानियों से अलग है। अपने पृष्ठभूमि में वह जिस घटना का चुनाव करती है, वह लोक का अत्यंत मौलिक और जरूरी तत्व है, जबकि कहानी का कहन लोक के आस-पास की शैली में नहीं है, फिर भी यह उस संवेदना को प्रेषित करने में सफल होती है, क्योंकि वह उन मूल्यों को, उसको चलाते आख्यानों को और उन आख्यानों में जुड़े टूल्स को पहचानती है। कथाकार जब उनका उपयोग करता है तो पूरा पूर्वांचल या ये कहें किसी भी अंचल की लोक-मान्यताएँ सजीव हो जाती हैं। इसका कारण है इस कहानी की घटनाओं में कथाकार किसी वैचारिक आग्रह या पूर्व-निर्धारित विचार का पालन करते नहीं दिखता है, बल्कि वह ज्यों-का-त्यों लोक की मान्यताओं और उनके सामंती व्यवहार में छुपी क्रूरता को दर्शाता है। इसके लिए वह पात्रों के चुनाव से लेकर घटनाओं में तटस्थता बरतता है और अपनी तरफ से उसे अंधविश्वास कहने या मनोविज्ञान कहने की जरूरत नहीं समझता है, बल्कि पाठक के लिए वह कहानी छोड़ देता है।

'उसका जीवन किसी तरल सपने में बदल रहा था, जहाँ यथार्थ और स्वप्न में कोई अंतर नहीं बचा था।' (*रजस्वला*)

इस कहानी-संग्रह की विशेषता इसका शिल्प है, जो पारंपरिक ढाँचे में नहीं है। इनमें घटनाओं का इतिवृत्तात्मक वर्णन भी नहीं है और न ही उसे सजाने का प्रयास। इन कहानियों के पात्र अपने मनोविकारों से ग्रस्त हैं। ये वो पात्र हैं, जो मनुष्य हो सकता है अथवा किसी क्षण में होता है। सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक और आर्थिक यथार्थ का स्वरूप बदल रहा है, ऐसे में बदलते मूल्यों में कथाओं के शिल्प को भी बदलने का आग्रह लेखक अपनी कहानियों में लेकर चलता है। उसकी सफलता यह है कि वह जन-सामान्य में फैली छोटी-छोटी मान्यताओं का प्रति-आख्यान और पूरक-आख्यान, दोनों रचता है।

अपने पहले कहानी-संग्रह में लेखक यथार्थ को लिखने मात्र से जो संवेदना नहीं प्रेषित हो सकती उसके लिए फैंटेसी का सहारा लेता है और अधिकांश कहानी के नैरेटर को एक विक्षिप्तता दे देता है, जो भारत की स्मृतियों को जहाँ-तहाँ बकता है। ये फैंटेसी और ये विक्षिप्तता जीवन के निरर्थकताबोध से उपजती हैं, लेकिन खामोशी का शिकार होने का प्रतिरोध भी रचती हैं।

## दरिया की बातें पत्थर से

(हिंदी ग़ज़ल-संग्रह)

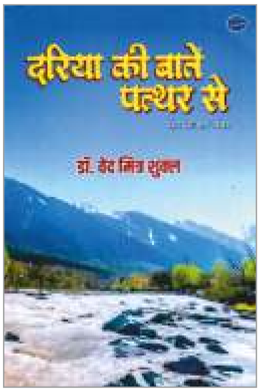


*समीक्षक* : **हरिशंकर राढ़ी**

*कवि* : **डॉ. वेद मित्र शुक्ल**

*प्रकाशक* : सर्व भाषा ट्रस्ट, उत्तम नगर, नई दिल्ली

*पृष्ठ* : 143

*मूल्य* : रु. 290/-

ग़ज़ल, कविता, आलोचना एवं बाल साहित्य में अपनी पहचान बना चुके डॉ. वेद मित्र शुक्ल का दूसरा ग़ज़ल संग्रह 'दरिया की बातें पत्थर से' प्रकाशित होकर आया है। इसमें संदेह नहीं कि ग़ज़ल काव्य साहित्य की एक जीवंत और लोकप्रिय विधा है। अपने छोटे-से आकार, छंद और पद के बंधन में ग़ज़ल इतना अधिक कह जाती है कि सुनने-पढ़ने वाले को एकदम अपनी लगने लगती है। अपने पारंपरिक कथ्य से हटकर जब से यह जन सरोकारों से जुड़ी है, तबसे इसकी रवानी और बढ़ गई है। संभवतः इसीलिए भाव की दृष्टि से विविधवर्णी ग़ज़ल विधा साहित्य में लेखन एवं विधाओं की भीड़ के बीच अपना स्थान मजबूत करती जा रही है। डॉ. वेद मित्र शुक्ल के इस संग्रह से गुज़रते हुए लगता है कि वे ग़ज़ल के मूड और उद्देश्य को साधकर इस रास्ते पर आगे बढ़ रहे हैं।

सर्व भाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली से प्रकाशित 143 पृष्ठों के इस संग्रह में कुल 127 ग़ज़लें ली गई हैं। तकनीकी दृष्टि से बात करें तो अधिकतर ग़ज़लें छोटी बह्र की हैं, कुछ ही ग़ज़लें अधिक शब्द खर्च करती हैं। वैसे तो बड़ी और छोटी, दोनों बहें साधना मुश्किल होता है, किंतु छोटी बह्र की ग़ज़ल में कठिनाई बढ़ जाती है। छोटी बह्र की ग़ज़लों में शायर को कम शब्दों और विकल्पों में समेटना पड़ता है। यह भी सही है कि बड़ी बह्र में कई बार अतिरिक्त शब्द भरने पड़ते हैं और वे ग़ज़ल को कमजोर कर देते हैं। डॉ. वेद मित्र शुक्ल ने छोटी बह्र की ग़ज़लों पर बड़ी मेहनत की है। ये ग़ज़लें पाठक को अपने साथ जोड़ने में सफल हैं।

संग्रह 'दरिया की बातें पत्थर से' की ग़ज़लों के कथ्य और भाव पर बात करें तो डॉ. वेद मित्र शुक्ल कुछ मन की और कुछ जन की बातें करते हैं। निस्संदेह, आज तमाम भौतिक प्रगति कर लेने तथा सुख के साधन जुटा लेने के पश्चात स्वयं को कहीं अकेला तो कहीं ठगा हुआ महसूस कर रहा है। उसके हृदय में एक अजीब किस्म का दर्द, अजीब-सी बेचैनी पल रही है। स्थिति गाँवों की भी अच्छी नहीं है, किंतु महानगरीय जीवन में 'सुख का दर्द' एवं अकेलापन बढ़ता जा रहा है। दूसरी अवस्था जन की है, जो आजादी के लगभग आठ दशक की पूर्णता के बावजूद एक सामान्य जीवन जीने के लिए संघर्षरत है। सत्ता और सियासत लोकहित के नाम पर बाँटने और अपनी रोटियाँ सेंकने में व्यस्त है। इन सबके बीच एक आम भारतीय जीने की राह बनाता है। वह कभी खुश होता है तो कभी दुखी। समाज की ढेर सारी विसंगतियों पर वह दृष्टि रखता है और अपनी अदम्य जिजीविषा के दम पर चलता रहता है। डॉ. वेद मित्र शुक्ल ने अपने समाज की इस संरचना एवं रासायनिकता का अध्ययन किया है और उन्हें इन ग़ज़लों में पिरो दिया है।

डॉ. शुक्ल का प्रयास रहा है कि हर ग़ज़ल में कुछ ऐसा कहें कि पाठक उससे जुड़े। जबसे ग़ज़लें अपने पारंपरिक विषय-वस्तु अर्थात हुस्न और इश्क से बाहर आई हैं, उनमें मिठास की जगह व्यंग्य और तंज प्रचुरता से आ गया है। वस्तुतः, बात का असर तारी करने के लिए व्यंजना से बेहतर कोई उपादान हो नहीं सकता। डॉ. वेद मित्र शुक्ल ने अपनी बहुत-सी ग़ज़लों में व्यंजना का प्रभावशाली उपयोग किया है। संग्रह के शीर्षक 'दरिया की बातें पत्थर से' का उल्लेख करें तो यह जिस ग़ज़ल से उठाया गया है, वह ग़ज़ल व्यंग्य से भरपूर है। खुद 'दरिया की बातें पत्थर से' की बात करें तो यह मेटाफर गहराई में जाकर व्यंजना में उतर जाता है। एक तरफ दरिया है, जिसमें रवानी है, जीवन है, जीवन देने की शक्ति है और लगातार बहते जाने का संकल्प है तो दूसरी ओर उसे पत्थर से टकराव है, उसी से बतकही है। उसके प्रवाह में ये पत्थर बाधा बनते हैं, किंतु उसकी सहनशीलता और

समावेशी प्रवृत्ति ऐसी है कि वह पत्थर से बातें करते हुए बहती रहती है। इस ग़ज़ल के शे'रों को देखें तो यह बात समझ में आती है—

कद है पर बौने भीतर से।
डरते हैं अनजाने डर से।
अच्छा लगता सुनना, यारों!
दरिया की बातें पत्थर से।
गाँधी का इक दौर रहा पर
घिन आती अब खद्दर से।

जब मन और मन के दर्द की बातें आती हैं तो डॉ. शुक्ल आम आदमी के अनुभूत कष्टों से जुड़ जाते हैं। उसमें समाज का एक नकारात्मक जीवन-दर्शन उभरता है, जिससे प्रायः सभी को दो-चार होना पड़ता है। कौन अपना, कौन पराया, यह वक्त बता देता है, किंतु इसकी टीस बेवक्त भी उठा करती है। इस ग़ज़ल में यही महसूस होता है—

मिट्टी, मौसम, आँखें नम हैं।
सबके अपने-अपने गम हैं।
काम पड़े तो पीछे हटते
वैसे सब बनते हमदम हैं।

जीवन बहुत औपचारिक हो गया है। कई बार तो ऐसा लगता है कि ऐसा कोई अपना नहीं है, जिससे मन का दुख कहा जा सके। उठना-बैठना और मिलना-जुलना बेहद बनावटी हो गया है। इसी बात को एक शे'र में वे बहुत तरीके से कहते हैं—

बस मौसम की बातें कब तक
कुछ और बयाँ करना होगा।

लेकिन ऐसा नहीं कि समाज की विसंगतियों से शायर दुखी या निराश है। उसकी मंशा निराशा फैलाने की नहीं, अपितु सावधान करने एवं आत्मनिर्भर करने की दिखती है। एक जगह कुछ दुखद या निराशावादी दिखता है तो आगे जाकर वह आशा का संचार करने लगता है। डॉ. शुक्ल को लगता है कि कविता में डूबना मनुष्य को उभारने का माध्यम हो सकता है। वे कविता के पक्ष में बार-बार खड़े दिखते हैं। देखिए—

उपजे ज्यों इक नाद है कविता।
जो कुछ भी आजाद है कविता।
रामराज्य या मार्क्सवाद हो
सबको आशीर्वाद है कविता।

इन ग़ज़लों में छोटी-छोटी बातों में खुशियाँ ढूँढ़ने का प्रयास किया गया है। यहाँ प्यार भी है, सहारा भी है और संतोष भी है। कविता किसी भी विधा में हो, किसी भी छंद में हो, उसका काम कठिन समय में हाथ पकड़कर चलाना और साथ देना है। उसका काम संकट खड़ा करना नहीं है, अपितु समाधान लाना है। ऐसा तभी हो सकता है जब सोच सकारात्मक हो। ऐसे अनेक उदाहरण इस संग्रह में देखे जा सकते हैं, जो इन उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। इस छोटी-सी बह्र की ग़ज़ल में बड़ी बात देखें—

अँगुलियों में प्यार पाया।
थाम कर संसार पाया।
कर गए नेकी अगर तो
दो दिया और चार पाया।

डॉ. शुक्ल सामाजिक और दिखावटी विसंगतियों को खूब पकड़ते हैं। संग्रह की अनेक ग़ज़लों में भरपूर तंज मिलता है, जो कहीं-न-कहीं विचलन पर प्रहार करते दिखता है—

रुडयार्ड किपलिंग टँगे हैं घरों में
कोई फ्रेम में सूर मढ़ता नहीं है।

इससे पहले डॉ. वेद मित्र शुक्ल का एक ग़ज़ल-संग्रह 'जारी अपना सफर रहा' आ चुका है। डॉ. शुक्ल की ग़ज़ल-यात्रा देखने से लगता है कि जीवनानुभव, साहित्यिक सक्रियता और सतत लेखन ने उन्हें बहुत माँज दिया है। भाव के साथ-साथ छंद की साधना में उन्होंने खुद को बहुत डुबाया है। उनकी अनुभूतियाँ और संवेदनाएँ उनके सॉनेट संग्रह 'एक समंदर गहरा भीतर' में भी देखी जा सकती हैं। इस ग़ज़ल-संग्रह में उन्होंने भावगत विविधता, सरोकारों से जुड़ाव, कवि-कर्तव्य और संवेदनशील मनुष्यता का अच्छा परिचय दिया है। संग्रह पठनीय है।

---

## पल दो पल साहिर के संग

(कविता-संग्रह)

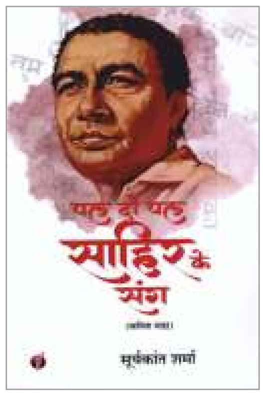


*समीक्षक* : **मनोज मोहन**

*कवि* : **सूर्यकांत शर्मा**

*प्रकाशक* : स्वतंत्र प्रकाशन प्रा.लि., पांडव नगर, दिल्ली-110092

*पृष्ठ* : 90

*मूल्य* : रु. 299/-

मैं पल दो पल का शायर हूँ / पल दो पल मेरी कहानी है / पल दो पल मेरी हस्ती है / पल दो पल मेरी जवानी है / मैं पल दो पल का शायर हूँ... इन पंक्तियों के शायर साहिर लुधियानवी उर्दू कविता ही नहीं, उर्दू ग़ज़ल के शानदार शख्सियत के रूप में जाने जाते हैं। अपनी जिंदगी के साठ वसंत भी न देख पाए साहिर सदियों तक कवि और गीतकार के रूप में याद किए जाते रहेंगे। साहिर पहली बार दिल्ली 1946 में आए। उनकी पहली हिंदी फ़िल्म थी—आज़ादी की राह पर, जिसमें उन्होंने चार गाने लिखे। विभाजन के बाद वे अपनी माँ की खोज में लाहौर निकले, वहीं उनकी माँ मिलीं। जब वहाँ गिरफ्तारी का वारंट निकला तो माँ के साथ स्वदेश लौटे। शुरू के एक साल दिल्ली रहने के बाद वे

बंबई लौटे, और फिल्म के एक उम्दा गीतकार के रूप में सफल रहे। नौशाद, शंकर-जयकिशन और सी. रामचंद्र को छोड़ सभी संगीतकारों के लिए उन्होंने गीत लिखे। उन्होंने कभी भी सस्ते किस्म के गीत नहीं लिखे। तेजेंद्र शर्मा की सहमति के शब्द हैं—जीवन की ऐसी कोई भी संवेदना या भाव नहीं, जिस पर साहिर की कलम न चली हो। ठेठ उर्दू से लेकर शुद्ध हिंदी तक में साहिर ने बेहतरीन रचनाएँ फिल्मों के लिए लिखी हैं।

सूर्यकांत शर्मा की छवि भले पिछले 35-36 वर्षों से समसामयिक विषयों, साहित्य, संस्कृति, लोक साहित्य, कृषि, लोकप्रिय विज्ञान जैसे विषयों पर लिखने वाले की हो, लेकिन जिस किसी ने उनके कविता-संग्रह 'पल दो पल साहिर के संग' को पढ़ा और देखा है वह उनका एकमात्र परिचय यही देगा कि वे साहिर के मुरीद हैं। और इस परिचय से सूर्यकांत शर्मा को भी इनकार न होगा। तभी तेजेंद्र शर्मा उनकी कविताओं में साहिर के प्रति उत्साह, प्रेम और भक्ति देख पाते हैं, तभी वे 'जादूगर शायर... साहिर लुधियानवी' लेख में कहते हैं कि सूर्यकांत शर्मा के लिए साहिर लुधियानवी किसी देवता या भगवान से कम नहीं हैं। वे निरंतर साहिर के जीवन और सोच पर कोई-न-कोई कविता रच बैठते हैं। इस कविता-संग्रह का संपादन करते हुए डॉ. लालित्य ललित के शब्द एक रौ में कहते हैं—कवि लेखक पत्रकार स्तंभकार, दृश्य और श्रव्य के प्रस्तोता (सूर्यकांत शर्मा) ने अपनी आदरांजलि को इक्यावन रचनाओं में प्रस्तुत किया है। इन रचनाओं की सहजता, सार्थकता, रचनात्मकता, सकारात्मकता, सटीकता के साथ-साथ रस का भाव पाठक को एक अनूठे आनंद से भर देगा।

इस संग्रह की 'भूमिका' में सूर्यकांत शर्मा साहिर के प्रति अपने लगाव के किसी कारण का जिक्र नहीं करते, बल्कि एक सच्चे मुरीद की तरह अपने आस-पड़ोस का वर्णन भर करते हैं। उन्होंने जो कुछ भी अपनी बात कही है वह अपनी कविता पंक्तियों में कही हैं, जैसे 'वे एक मुहब्बत : साहिर' शीर्षक कविता में वे कहते हैं—साहिर : एक मुहब्बत/ मुहब्बत को मुहब्बत से समझें,/ ग़ज़ल से नज़्म से समझें,/ अब्दुल हई की नजर से समझें। शर्मा ये मानते हैं कि उन्हें साहिर को जानने और समझने का मौका उनके गीत, ग़ज़ल, नज़्म और साक्षात्कारों से मिला है। वे बाद में जाकर साहिर लुधियानवी फैन क्लब के संस्थापक डॉ. जयंत कुमार रामटेके से भी मिले।

साहिर तो अपनी ग़ज़लों और नज़्मों में एक मानवतावादी और पर्यावरणवादी व्यक्ति नज़र आते हैं। लता जी ने उनकी इस तरह की पंक्तियों को अपना स्वर भी दिया—इस धरती का रूप ना उजड़े/ प्यार की ठंडी धूप ना उजड़े/ सबको मिले...दाता/ सबको मिले सुख का वरदान। सूर्यकांत शर्मा के 'नया शहर' शीर्षक कविता की अंतिम कुछ पंक्तियों में ये इल्तिज़ा है कि—अभी ना जाओ छोड़ कर, कोई ऐसी तस्वीर बनाते हैं।/ बहुत सह चुके पैसे, रसूख और ताक़त की धौंस, /आओ अब इत्र ए इंसानियत की खुशबू से सराबोर होते हैं।/चलो आज़ादी के अमृत काल में/ एक नया-सा भारत-सा शहर बसाते हैं,/ चलो, अब स्वर्ग-सा एक नया शहर बनाते हैं।

ऐसे शायर के जादूगरी का हाल यह था कि मशहूर मौसिकीकार जयदेव ने पाकिस्तान चले गए हाफ़िज़ जलंधरी के 'अभी तो मैं जवान हूँ' के तर्ज पर लिखने को कहा तो तो साहिर ने लिखा था—'अभी न जाओ छोड़ कर कि दिल अभी भरा नहीं'। संग्रह की आखिरी कविता 'क़दमों के निशाँ' में सूर्यकांत शर्मा मानो अपनी भावांजलि अर्पित कर रहे हों—काश कि छोड़े होते/ तुमने सपुर्द-ए-ख़ाक के/ भी निशाँ,/ क़ब्र/ तो सब्र कर लेते/ शब-ए-रात को/ जाकर वहाँ।/काश कि छोड़े होते/ तुमने अपने क़दमों/ के भी निशाँ।

## पाठकीय प्रतिक्रिया

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की द्विमासिक पत्रिका पुस्तक-संस्कृति का जुलाई-अगस्त 2025 का अंक प्राप्त हुआ। बहुत-बहुत धन्यवाद। प्रधान संपादक प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे का संपादकीय ज्ञानवर्द्धक है। बहुत खुशी की बात है कि आज हमारा देश इस वर्ष स्वाधीनता का 79वाँ वर्ष मना रहा है। यह बात सच है कि स्वतंत्रता के बाद से देश ने बहुत प्रगति की है।

प्रो. जगमोहन सिंह राजपूत का लेख जनजातीय समाज पर एक महत्वपूर्ण लेख है। देश में आज जो लोग मुख्यधारा से छूट गए हैं, उन्हें आगे बढ़ाने की आवश्यकता है। इसी तरह, लक्ष्मीनारायण भाला तथा देवेंद्र मेवाड़ी का लेख भी प्रासंगिक है। 'भारत में हस्तशिल्प : कला भी, आजीविका भी' लेख सभी विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। सच पूछा जाए तो बच्चों के कोर्स में हस्तशिल्प को शामिल करना चाहिए। 'वृक्ष ही बनाते हैं दक्ष' भी एक महत्वपूर्ण लेख है। पुस्तकों की समीक्षा का स्तंभ बेहद उपयोगी है।

—**डॉ. मंजू देवी**, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

## शोक संदेश

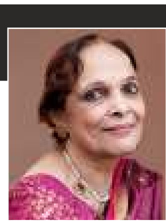

**राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की पूर्व अंग्रेजी संपादक श्रीमती मंजू गुप्ता का निधन**

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत में 25 साल तक (1978-2003) सेवारत रहने वालीं अंग्रेजी भाषा संपादक, श्रीमती मंजू गुप्ता का लगभग 82 वर्ष की आयु में विगत 22 अगस्त, 2025 को निधन हो गया। पूर्व एनबीटी संपादक स्व. मंजू गुप्ता वर्ष 1978 में न्यास के संपादकीय अनुभाग से जुड़ी थीं। न्यास की लोकोपयोगी 'विज्ञान पुस्तकमाला' की स्थापना से लेकर प्रोन्नयन तक में उनका अप्रतिम योगदान रहा। वे कई वर्षों तक एनबीटी न्यूज लेटर की संपादक भी रहीं। न्यास में रहते हुए, उन्होंने पूरी लगन, निष्ठा और समर्पण के साथ अपना काम किया। न्यास-परिवार दिवंगत आत्मा को श्रद्धा-सुमन अर्पित करता है।

## राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के स्थापना दिवस पर व्याख्यान कार्यक्रम आयोजित

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के 69वें स्थापना दिवस की पूर्व संध्या पर 31 जुलाई, 2025 को, न्यास के मुख्यालय में एक विशेष व्याख्यान कार्यक्रम का आयोजन किया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि एवं वक्ता, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) के निदेशक, प्रो. दिनेश प्रसाद सकलानी ने 'पठन रुचि : आजीवन शिक्षा का एक स्रोत' विषय पर वार्षिक स्थापना दिवस व्याख्यान दिया। उन्होंने पाणिनी, चाणक्य, शंकराचार्य, तुलसीदास, कबीरदास, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी आदि महापुरुषों के दर्शन के आलोक में भारत की ज्ञान परंपरा को रेखांकित किया। आगे उन्होंने कहा कि अगर आप चिंतन-मनन करते हैं तो सीखने की क्षमता बढ़ती है। प्रत्येक आदमी अपने कर्तव्यों से अपना हर दिन विशिष्ट बना सकता है। इस प्रकार 140 करोड़ विभूतियाँ देश को कहाँ से कहाँ तक ले जा सकती हैं, यह सोचने की बात है। जब पढ़ाई की बात आती है तो हम ये जानें कि क्या पढ़ें और कितना पढ़ें। एनसीईआरटी की पुस्तकें पढ़ने पर लगता है कि हम अपने को पढ़ रहे हैं, अपने को जान रहे हैं। एनबीटी किताब की संस्कृति को आगे बढ़ा रहा है। किताबों के प्रति हमारा आकर्षण बने रहना चाहिए। एक शोध यह होना चाहिए कि जो लोग डिजिटल या फिजिकल मोड में पढ़ रहे हैं उनमें लर्निंग प्रोग्रेस क्या है? पुस्तकें हमारे लिए एक आईना हैं। जो कुछ हो गया है, उसकी छाप पुस्तकों में दिखाई देती है। अगर हम ज्ञान का प्रसार करते हैं, उत्पादन करते हैं तो यह बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य है।

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे ने अपने प्रेरणादायी उद्‌बोधन में प्रेमचंद और गोस्वामी तुलसीदास की जयंती तथा शहीद उधम सिंह के शहादत दिवस का स्मरण करते हुए उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। आगे उन्होंने कहा कि एनसीईआरटी और एनबीटी 'क्वालिटी एंड अफोर्डेबल बुक्स' का प्रतीक हैं। एनसीईआरटी के निदेशक श्री सकलानी जी ने स्कूली किताबों के क्षेत्र में ऐसा सराहनीय कार्य किया है कि आने वाली पीढ़ी इन पुस्तकों के अध्ययन से विशेष गुणों वाली होगी। हमारी सेल्फ ग्रोथ स्वयं की प्रेरणा से होती है। हम इस ग्रोथ को लेकर अंतर्वत गुणवत्ता को बढ़ाएँ।

कार्यक्रम की शुरुआत में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के निदेशक, श्री युवराज मलिक ने स्वागत उद्‌बोधन दिया। अपने संबोधन में उन्होंने न्यास की उपलब्धियों और भावी योजनाओं पर विस्तार से प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि पुस्तक प्रोन्नयन योजना को विस्तृत रूप दे दिया गया है। हमारा उद्देश्य है कि हम देश में महत्वपूर्ण जगहों पर लाइब्रेरी बनाएँ। पुस्तक प्रसार के लिए हम आठ नई बसें और जोड़ेंगे। पुणे में पहला स्टोरीटेलिंग सेंटर स्थापित किया गया है। आने वाले समय में 50 पुस्तक

मेला स्थापित करने का हमारा लक्ष्य है। एनबीटी केवल एक सरकारी संस्था नहीं है, यह एक नॉलेज पार्टनर है।

इस अवसर पर न्यास में अपने कार्यकाल के 25 वर्ष पूर्ण करने वाले अधिकारियों, क्रमशः श्री कुमार विक्रम (*मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक*), *संपादक* मो. शम्स इकबाल, *सहायक संपादक* श्री दीप सैकिया, श्री टी. मथन राज एवं श्री दीपक कुमार गुप्ता तथा *विपणन कार्यकारी* श्री जितेंद्र एन. देवरुखकर को पुरस्कृत किया गया। इसके अलावा, न्यास में कार्यरत वे कर्मी, जिनका कार्य बहुत ही सराहनीय रहा उन्हें भी पुरस्कृत किया गया। वे नाम हैं—*उप निदेशक* श्री मयंक सुरोलिया एवं श्री आशीष चौधरी, *सहायक संपादक* श्री द्विजेंद्र कुमार, *कलाकार* श्री समरेश चटर्जी, *निदेशक के वरिष्ठ वैयक्तिक सहायक* श्री रमेंद्र मेहरा, *सहायक* श्री रविंद्र कुमार, *विपणन अधिकारी* श्री दिनेश कुमार, *सहायक व्यवसाय प्रबंधक* (विक्रय) श्री अमित कुमार, *डाटा एंट्री ऑपरेटर* श्री देवी सिंह, *लेखापाल* श्री ध्रुव भंडारी, *कारपेंटर* श्री हरीश, *पेंटर* श्री गणेश एवं *एमटीएस* श्री बंटी।

कार्यक्रम के अंत में, न्यास के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक, श्री कुमार विक्रम ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

## राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने मनाया 79वाँ स्वतंत्रता दिवस

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने 15 अगस्त, 2025 को मुख्यालय परिसर में 79वाँ स्वतंत्रता दिवस बड़े धूमधाम के साथ मनाया। इस अवसर पर, न्यास के निदेशक श्री युवराज मलिक ने राष्ट्रीय ध्वज फहराया। ध्वजारोहण के पश्चात न्यास के अधिकारियों ने राष्ट्रगान गाया।

इस अवसर पर निदेशक महोदय ने उपस्थित जनसमूह को संबोधित करते हुए राष्ट्र- निर्माण में नागरिकों की भूमिका पर प्रकाश डाला। विभिन्न विद्यालयों के युवा प्रतिभागियों और विद्यार्थियों ने भी समारोह में बड़े उत्साह के साथ भाग लिया।

# पीएम-युवा लेखकों को लाल किले पर प्रधानमंत्री द्वारा तिरंगा फहराते देखने का अवसर

पीएम-युवा मेंटरशिप योजना के पहले और दूसरे संस्करणों के तहत चुने गए लेखकों को 15 अगस्त, 2025 को लाल किले पर भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी द्वारा तिरंगा फहराते हुए देखने और राष्ट्र के नाम उनके संबोधन को सुनने का अवसर मिला। इस स्वतंत्रता दिवस पर, यह एक गौरवपूर्ण क्षण था, क्योंकि पीएम-युवा के लेखक लाल किले के समारोह में विशेष अतिथि के रूप में शामिल हुए, जो राष्ट्र निर्माण में युवा आवाजों की पहचान का प्रतीक हैं। पीएम-युवा मेंटरशिप योजना पढ़ने और लिखने की संस्कृति को बढ़ावा देने के माननीय प्रधानमंत्री के दृष्टिकोण के तहत शुरू की गई शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार की एक विशेष पहल है, जिसे राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा कार्यान्वित किया गया है और इसके दो प्रभावशाली संस्करण सफलतापूर्वक पूरे हो चुके हैं।

पीएम-युवा 1.0 के अंतर्गत, 75 लेखकों को मार्गदर्शन प्रदान किया गया, जिनकी भारत के स्वतंत्रता आंदोलन पर प्रतियाँ प्रकाशित हुईं और नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2023 में लोकार्पित की गईं, जो देशभर के पाठकों तक पहुँच रही हैं। पीएम-युवा 2.0 के अंतर्गत, 41 लेखकों का चयन किया गया, उन्हें मार्गदर्शन प्रदान किया गया और उनकी पुस्तकों का लोकार्पण नई दिल्ली विश्व पुस्तक मेला 2025 में माननीय केंद्रीय शिक्षा मंत्री, श्री धर्मेंद्र प्रधान द्वारा किया गया।

वर्तमान में तीसरे संस्करण के प्रक्रियाधीन रहने के साथ, यह योजना साहित्यिक प्रतिभाओं को पोषित करने, कहानियों को संरक्षित करने और शब्दों की शक्ति के माध्यम से भावी पीढ़ियों को प्रेरित करने के रूप में जारी है। इससे पहले, स्वतंत्रता दिवस की पूर्व-संध्या पर, इंडिया हैबिटेट सेंटर, नई दिल्ली में चयनित पीएम-युवा लेखकों और उनके परिवारों के सम्मान में एक विशेष मिलन समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के अपर सचिव, श्री सुनील बरनवाल मुख्य अतिथि थे। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय के संयुक्त सचिव, श्री गोविंद जायसवाल भी इस कार्यक्रम में उपस्थित थे। श्री बरनवाल ने इस योजना की सराहना की और युवा लेखकों को अपने लेखन पथ पर आगे बढ़ते रहने के लिए प्रोत्साहित किया। इस अवसर पर एनबीटी के निदेशक श्री युवराज मलिक ने प्रधानमंत्री-युवा योजना के महत्व पर प्रकाश डाला।

## मुंशी प्रेमचंद की 145वीं जयंती पर विशेष कार्यक्रम आयोजित

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, द्वारा हिंदी साहित्य के महान लेखक मुंशी प्रेमचंद की 145वीं जयंती के उपलक्ष्य में विगत 31 जुलाई, 2025 को 'प्रेमचंद दिवस' का आयोजन किया गया। टैगोर इंटरनेशनल स्कूल के बच्चों की उपस्थिति में तीन प्रसिद्ध कथावाचकों ने प्रेमचंद की कहानियों के माध्यम से उन्हें जीवन के आदर्शों से परिचित कराते हुए प्रेरित किया। सेवानिवृत्त आईपीएस ऑफिसर डॉ. शांतनु मुखर्जी ने प्रेमचंद की लिखी कहानी 'जुलूस', लेखिका एवं कथावाचक सुनीता सिंह ने 'पूस की रात', और रेडियो एंकर सायरा मुजतबा ने 'ईदगाह' सुनाकर बच्चों को प्रेमचंद की लेखन-शैली से अवगत कराया और उनके आदर्शवादी दृष्टिकोण से बच्चों को परिचित कराया। अंत में एक प्रश्नोत्तरी प्रतियोगिता भी हुई, जिसमें बच्चों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया।

## इरोड पुस्तक मेले में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत ने इरोड पुस्तक मेले में भाग लिया, जो 01 से 12 अगस्त, 2025 तक चिक्कैया राजकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, वीरप्पनचतिराम, इरोड में आयोजित किया गया।

इस मेले में तमिल, अंग्रेजी और हिंदी की पुस्तकों का एक दिलचस्प संग्रह प्रस्तुत किया गया, जिसमें सभी आयु वर्ग के लिए विविध विधाओं की पुस्तकें शामिल थीं। बच्चों की प्रेरक कहानियों से लेकर विचारोत्तेजक साहित्य तक, हर पाठक के लिए कुछ-न-कुछ था।

बच्चों का उत्सुकता से न्यास के स्टॉलों पर आना और आश्चर्य और जिज्ञासा से पुस्तकों के पन्ने पलटते हुए देखना बहुत ही सुखद अनुभव था।

# डॉ. विनोद पॉल ने 'केयर ऑफ न्यू बॉर्न बेबी' पुस्तक का लोकार्पण किया

नीति आयोग के माननीय सदस्य डॉ. विनोद पॉल ने 07 अगस्त, 2025 को राष्ट्रीय पुस्तक न्यास मुख्यालय, वसंत कुंज, नई दिल्ली में आयोजित पुस्तक लोकार्पण समारोह में डॉ. शंकर नारायण और डॉ. सुभाष चंद्र शॉ द्वारा लिखित, 'केयर ऑफ न्यू बॉर्न बेबी' पुस्तक का लोकार्पण करते हुए कहा, "आज हम एक ऐसी पुस्तक का उत्सव मना रहे हैं, जिसमें बेहतरीन विषय-वस्तु है और यह एक नवजात शिशु की माँ की जरूरतों से मेल खाती है।" डॉ. पॉल ने आगे कहा कि यह पुस्तक उन सवालों का सारांश है, जो माताएँ, माता-पिता और देखभाल करने वाले अकसर पूछते हैं और इस पुस्तक के माध्यम से, लेखक देखभाल करने वालों को सही काम करने में सक्षम बना रहे हैं, जो वास्तव में एक नेक काम है। इसे एक सटीक और महत्वपूर्ण दस्तावेज बताते हुए डॉ. पॉल ने इस पुस्तक को जागरूकता का उत्प्रेरक बताया और शिक्षाविदों और विशेषज्ञों से आग्रह किया कि वे देखभाल करने वालों को बेहतर जानकारी प्रदान करने के लिए अपने ज्ञान को साझा करें। उन्होंने प्रत्येक परिवार के लिए इस पुस्तक को उपयोगी बताया।

अपने संबोधन में, एनबीटी के निदेशक, श्री युवराज मलिक ने शिशु स्वास्थ्य देखभाल जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर प्रलेखित ज्ञान की आवश्यकता के बारे में बात की, ताकि पारंपरिक प्रथाओं पर निर्भरता कम हो सके। उन्होंने कहा कि सरल तरीके से लिखी गई यह पुस्तक बच्चों की देखभाल करने वालों के अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर देती है। श्री मलिक ने श्रोताओं से अधिक-से-अधिक लिखने का आग्रह किया, ताकि उनके अनुभवों और ज्ञान को प्रलेखित किया जा सके। पुस्तक के महत्व को देखते हुए उन्होंने कहा कि पुस्तक का 22 भारतीय भाषाओं में अनुवाद किया जाएगा।

लेखन के प्रति अपनी प्रेरणा पर विचार व्यक्त करते हुए, सशस्त्र बल चिकित्सा महाविद्यालय के पूर्व छात्र और दिल्ली स्थित आर्मी हॉस्पिटल (रिसर्च एंड रेफरल) के प्रमुख, डॉ. शंकर नारायण ने बताया कि माताएँ अकसर नवजात शिशुओं से संबंधित महत्वपूर्ण, लेकिन अनुत्तरित प्रश्नों के साथ उनके पास आती हैं, जिनका उत्तर मानक पाठ्यपुस्तकों में नहीं दिया जाता। उन्होंने कहा, "इस किताब का उद्देश्य उन्हें सरल भाषा में, बातचीत के माध्यम से, उपदेशात्मक ढंग से नहीं, उत्तर देना है।" उन्होंने किताब की लंबी यात्रा का वर्णन किया, जिसमें 2010 में हवाई अड्डे की कतारों में नोट्स टाइप करने से लेकर वर्षों तक चली बातचीत के माध्यम से विषय-वस्तु को परिष्कृत करने तक का वर्णन है।

सह-लेखक और नवजात रोग विशेषज्ञ, डॉ. सुभाष चंद्र शॉ ने कहा कि यह पुस्तक शिशु देखभाल से जुड़ी गलत सूचनाओं, मिथकों और सांस्कृतिक वर्जनाओं का खंडन करती है, जिससे देखभाल के मानकों में सुधार की आशा है। उन्होंने आगे कहा, "मुझे उम्मीद है कि हर माँ को इस पुस्तक से लाभ होगा।" पुस्तक की विषय-वस्तु के बारे में बात करते हुए, डॉ. शॉ ने कहा, "हमने पुस्तक को विभिन्न खंडों में विभाजित किया है, जिनमें स्तनपान, नींद और वजन संबंधी चिंताओं जैसे मुद्दों को शामिल किया गया है।"

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के मुख्य संपादक और संयुक्त निदेशक, श्री कुमार विक्रम ने धन्यवाद ज्ञापन करते हुए कहा कि यह पुस्तक वैज्ञानिकों, पेशेवरों और पाठकों के बीच की दूरी को पाटती है। इस पुस्तक का सार्वभौमिक आकर्षण है और यह देखभाल करने वालों के लिए लाभदायक होगी।

# गंगा पुस्तक परिक्रमा का आगमन अलीगढ़ में

'नमामि गंगे' पहल के सहयोग से राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा आयोजित एक सचल पुस्तक प्रदर्शनी, गंगा पुस्तक परिक्रमा, गंगा किनारे बसे शहरों में भ्रमण के बाद 4 अगस्त, 2025 को अलीगढ़ पहुँची। इस पहल का उद्देश्य साहित्य, संस्कृति और पर्यावरण जागरूकता के प्रति सचेत करना और पवित्र गंगा के किनारे बसे समुदायों को शैक्षिक गतिविधियाँ प्रदान करना है।

अलीगढ़ में, अग्रसेन इंटरनेशनल स्कूल और एसएसडी इंटर कॉलेज के छात्रों ने चित्रकला और कहानी सुनाओ कार्यक्रम में भाग लिया, जबकि रेडिएंट स्टार्स इंटरनेशनल स्कूल और मिशन इंटरनेशनल अकादमी के छात्रों ने भारत की नदियों और विरासत पर केंद्रित प्रश्नोत्तरी और चित्रकला सत्रों में भाग लिया।

इन गतिविधियों का मार्गदर्शन स्रोत व्यक्ति श्री दिलीप शर्मा, श्री लखन और श्री संचित ने किया।

अलीगढ़ का यह कार्यक्रम एक बड़े दौरे का हिस्सा है, जो पहले ही अमरोहा, श्रीनगर, देहरादून, बिजनौर, पौड़ी गढ़वाल, रुद्रप्रयाग, संभल और बुलंदशहर सहित अनेक शहरों/जिलों का दौरा कर चुका है। प्रत्येक पड़ाव पर, परिक्रमा ने लोगों को पुस्तकों और गंगा के साथ सांस्कृतिक और पारिस्थितिकी बंधन से सफलतापूर्वक जोड़ा है।

इस पहल का मिशन पढ़ने के प्रति प्रेम को बढ़ावा देना, नदी की सांस्कृतिक कथा को संरक्षित करना और अगली पीढ़ी को भारत की प्राकृतिक विरासत की रक्षा के लिए उत्प्रेरित करना है।

# राष्ट्रीय पुस्तक प्रोन्नयन नीति के कार्यान्वयन के संबंध में एक बैठक आयोजित

राष्ट्रीय पुस्तक प्रोन्नयन नीति के कार्यान्वयन के संबंध में 24 जुलाई, 2025 को डॉ. अंबेडकर अंतरराष्ट्रीय केंद्र, नई दिल्ली में एक बैठक आयोजित की गई। बैठक के दौरान, माननीय केंद्रीय शिक्षा मंत्री श्री धर्मेंद्र प्रधान ने कहा कि पुस्तक पठन को आनंददायक बनाना होगा। उन्होंने परिषद् को पढ़ने की संस्कृति को बढ़ावा देने और पुस्तकों में रुचि जगाने के लिए प्रौद्योगिकी को अपनाने और एकीकृत करने पर ध्यान केंद्रित करने की भी सलाह दी। श्री धर्मेंद्र प्रधान ने पढ़ने की संस्कृति को पोषित और सुदृढ़ करने के साथ-साथ देश के सुदूर कोनों तक पुस्तकों की गुणवत्ता, सामर्थ्य और पहुँच बढ़ाने के लिए सदस्यों द्वारा दिये गए सुझावों की सराहना की। उन्होंने पुस्तकों के संवर्धन के लिए नई तकनीकों को अपनाने पर भी जोर दिया।

बैठक में राष्ट्रीय पुस्तक प्रोन्नयन नीति के कार्यान्वयन हेतु प्रमुख सिफारिशों पर चर्चा की गई, जिसका उद्देश्य पूरे भारत में पढ़ने की पहुँच, गुणवत्ता और संस्कृति को बढ़ाना है। शिक्षा मंत्रालय के संयुक्त सचिव, श्री गोविंद जायसवाल ने राष्ट्रीय पुस्तक प्रोन्नयन नीति के मसौदे के प्रमुख उद्देश्यों और फोकस क्षेत्रों, जैसे—पुस्तकों की उपलब्धता बढ़ाना, पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार, पाठक संख्या में वृद्धि आदि पर एक प्रस्तुति दी। उन्होंने नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने में हितधारकों की भूमिका के बारे में भी बात की।

इससे पहले, एनबीटी के निदेशक, श्री युवराज मलिक ने विशिष्ट सदस्यों का स्वागत किया और भारत सरकार के विकसित भारत @2047 विजन के अनुरूप राष्ट्रीय पुस्तक प्रोन्नयन नीति (एनबीपीपी) के मसौदे को राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के कार्यान्वयन योजना के हिस्से के रूप में तैयार करने के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डाला। राष्ट्रीय पुस्तक प्रोन्नयन परिषद् के अन्य सदस्यों ने भी पुस्तकों और पढ़ने की आदत को बढ़ावा देने में पुस्तकालयों की भूमिका, पुस्तक वितरण, लेखकों और प्रकाशकों की भूमिका और पुस्तक-लेखन में रचना या भाव की चोरी (Plegarism) जैसी चुनौतियों आदि पर अपने विचार साझा किए।

## अयोध्या में न्यास द्वारा आयोजित पुस्तक प्रदर्शनी संपन्न

अयोध्या के जे.पी.एन. सिंह सभागार में राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा 21 से 27 अगस्त, 2025 तक पुस्तक प्रदर्शनी आयोजित की गई।

प्रदर्शनी का उद्घाटन अतिरिक्त जिला मजिस्ट्रेट, अयोध्या श्री एम.के. सिंह ने माँ सरस्वती की वंदना एवं दीप प्रज्वलन के साथ किया। इस अवसर पर उन्होंने विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को संबोधित करते हुए पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रेरित किया तथा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास की भव्य पुस्तक प्रदर्शनी की सराहना की।

प्रदर्शनी में आर्मी पब्लिक स्कूल, केंद्रीय विद्यालय, उदया पब्लिक स्कूल और साकेत पी.जी. कॉलेज के छात्र-छात्राओं व शिक्षकों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया और पुस्तकों का अवलोकन व खरीदारी की।

## विदिशा पुस्तक मेला 2025 का आयोजन

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत एवं जिला प्रशासन विदिशा के संयुक्त तत्वावधान में 23-29 अगस्त, 2025 तक रवींद्रनाथ टैगोर सांस्कृतिक भवन, विदिशा में पुस्तक मेला आयोजित किया गया। उद्घाटन समारोह में विदिशा के जिलाधिकारी श्री अंशुल गुप्ता ने कहा कि आज के समय में बच्चों को पुस्तकों से जोड़ने की आवश्यकता है। माननीय विधायक श्री मुकेश टंडन ने इसे विदिशा के लिए गौरवपूर्ण अवसर बताया और नागरिकों से मेले में सहभागिता का आह्वान किया। एनबीटी के संयुक्त निदेशक (प्रशासन एवं वित्त) श्री राकेश कुमार यादव ने विदिशा में पहली बार आयोजित इस मेले में लोगों से अधिक-से-अधिक सहभागिता का आग्रह किया। एनबीटी की न्यासी बोर्ड की सदस्य डॉ. साधना बलवटे ने कहा कि न्यास का उद्देश्य अच्छी पुस्तकों को छोटे शहरों और पाठकों तक पहुँचाना है। समारोह में जिला पंचायत अध्यक्ष श्रीमती गीता कैलाश रघुवंशी, नगरपालिका परिषद् अध्यक्ष श्रीमती प्रीति राकेश शर्मा तथा माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल के कुलगुरु श्री विजय मनोहर तिवारी सहित अन्य गणमान्य अतिथि भी उपस्थित रहे।

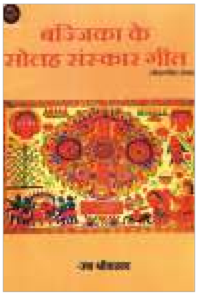


## बज्जिका के सोलह संस्कार गीत

(लोकगीत संग्रह)

**उषा श्रीवास्तव**

प्रस्तुत पुस्तक में बज्जिका में 16 संस्कारों के भूले-बिसरे लोकगीतों को सँजोया गया है। इस पुस्तक में बज्जिकांचल में प्रचलित गीतों का हिंदी में भावार्थ देते हुए 'परिशिष्ट' में कुछ विशेष लोकभाषा के शब्दों का हिंदी में अर्थ भी प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक में संगृहीत संस्कार गीत प्रायः बज्जिकांचल में 16 संस्कारों, जैसे—गर्भाधान, सीमंतोनयन, अन्नप्रासन, चूड़ाकरण, उपनयन, विवाह आदि के अवसर पर गाए जाते हैं।

**शतरंग प्रकाशन**, लखनऊ, उत्तर प्रदेश

**पृ. 168; रु. 300.00**

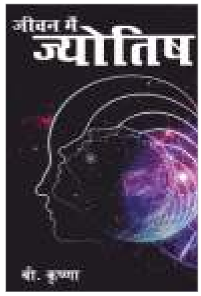


## जीवन में ज्योतिष

**बी. कृष्णा**

ज्योतिष पर आधारित प्रस्तुत पुस्तक को छह खंडों में विभाजित किया गया है, यथा—*ज्योतिष बनाम जिंदगी, ग्रह नक्षत्र : ज्योतिषीय तथ्य, ज्योतिष में कुंडली महिमा, ज्योतिषीय उपाय और आयुर्वेद, पढ़ाई, प्रतियोगिता और करियर-कारोबार* तथा *ज्योतिष का दर्शन विज्ञान*। लेखक ने इन अध्यायों में व्यक्ति-निर्माण से कहीं आगे जाकर जीवन-निर्माण कैसे किया जा सकता है, यह बताने का प्रयास किया है।

**मैगबुक, कनॉट प्लेस**, नई दिल्ली

**पृ. 136; रु. 280.00**

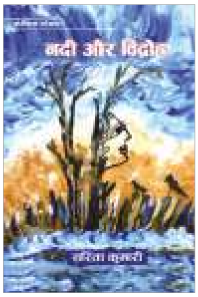


## नदी और विद्रोह

**सरिता कुमारी**

प्रस्तुत पुस्तक एक काव्य-संग्रह है, जिसमें निहित कविताओं का मूल स्वर अध्यात्म, स्त्री-विमर्श, विद्रोह, प्रेम एवं दुनियावी है। ये कविताएँ समय-चक्र को रेखांकित करती हैं व निराशा पर आशा का संचार भी करती हैं। कवि का उद्देश्य अपने परिवेश में जो कुछ देखा, सुना और भोगा, उन अनुभूतियों एवं सच्चाइयों को समाज एवं विश्व के समक्ष प्रस्तुत करना है।

**वनिका पब्लिकेशन्स**, विष्णु गार्डन, नई दिल्ली

**पृ. 118; रु. 250.00**

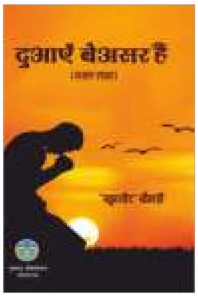


## दुआएँ बेअसर हैं

**'खुरशीद' खैराड़ी**

इस ग़ज़ल-संग्रह में 90 ग़ज़लें संकलित की गई हैं। ग़ज़लों की भाषा सरल है। जहाँ कुछ कठिन शब्द लिये गए हैं, वहाँ उन शब्दों का अर्थ साथ में दिया गया है। संग्रह में संकलित कुछ ग़ज़लें इस प्रकार हैं—*है अजीब खेल नसीब का; खफ़ा खफ़ा है हर नज़र, किसे-किसे जवाब दें; हर दर्द सुनाएँ किस-किस को; हर बात कहाँ लेकर जाएँ* और *आ गई है बहार फूलों पर* आदि।

**गुफ्तगू पब्लिकेशन**, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश

**पृ. 112; रु. 300.00**

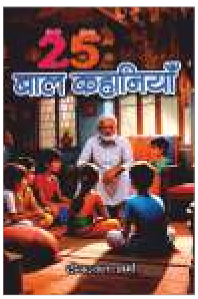


## 25 बाल कहानियाँ

**दीनदयाल शर्मा**

प्रस्तुत बाल कहानी-संग्रह में बच्चों के लिए प्रेरणाप्रद कहानियाँ शामिल हैं, जैसे—*दादाजी की दोस्ती, माँ की सीख, पिंकी की चतुराई, अविस्मरणीय चमक, एकता में शक्ति, पतंगों का त्योहार, मोबाइल की लत, ब्रूनो की बहादुरी* आदि। इन कहानियों की भाषा सरल एवं सुबोध है।

**संपर्क प्रकाशन**, हनुमानगढ़ संगम, राजस्थान

**पृ. 64; रु. 150.00**

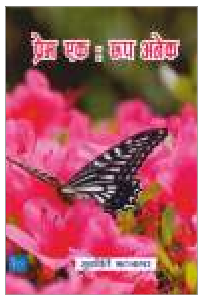


## प्रेम एक : रूप अनेक

**सुकीर्ति भटनागर**

यह कविता-संग्रह है, जिसमें प्रेम के विभिन्न रूपों को कविता के माध्यम से दर्शाया गया है। पुस्तक को 17 खंडों में विभाजित किया गया है, यथा—*ईश्वर प्रेम, माता-पिता प्रेम, भाई-बहन प्रेम, जीवन प्रेम, पति-पत्नी प्रेम, दादा-दादी प्रेम, पौत्र-पौत्री प्यार, प्रकृति प्रेम, पुस्तक प्रेम, विश्व प्रेम, जीव-जंतु प्रेम, कला प्रेम, मानवता प्रेम, मित्र प्रेम, स्व-प्रेम, स्वास्थ्य प्रेम* तथा *खेल प्रेम*।

**आनंद कला मंच**, भिवानी, हरियाणा

**पृ. 128; रु. 300.00**

# चिनार पुस्तक महोत्सव 2025

## ‘कला-ए-कश्मीर’, ‘शारदा लिपि’, ‘तमिल-कश्मीरी संवाद’ एवं ‘राजतरंगिणी कार्यशाला’ का अद्भुत संगम

महोत्सव के पहले दिन का एक प्रमुख आकर्षण शारदा लिपि पर पहली राष्ट्रीय प्रदर्शनी’ का उद्घाटन रहा। यह प्रदर्शनी कश्मीर की प्राचीन भाषायी विरासत की एक शैक्षणिक एवं दृश्यात्मक यात्रा थी। प्रदर्शनी में विभिन्न पैनलों के माध्यम से शारदा लिपि की उत्पत्ति और इतिहास, लिपि के अक्षरों और विद्वानों के कार्यों को प्रदर्शित किया गया। साथ ही, साहित्यिक खंड में शारदा लिपि पर एक विचारोत्तेजक चर्चा भी आयोजित की गई।

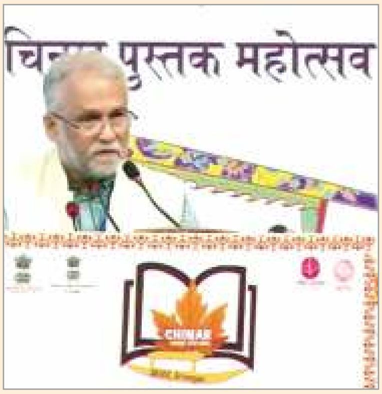


‘कला-ए-कश्मीर’ कार्यक्रम में कश्मीरी कला, संगीत और साहित्य की सुंदर प्रस्तुतियाँ देखने को मिलीं। इसके साथ ही, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित ‘जम्मू, कश्मीर और लद्दाख : सातत्य और संबद्धता का ऐतिहासिक वृत्तांत’ पुस्तक के कश्मीरी अनुवाद का वीडियो प्रस्तुत किया गया और फिर औपचारिक लोकार्पण हुआ। यह स्थानीय भाषा में क्षेत्रीय इतिहास को सुलभ बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था।

पुस्तक महोत्सव के दूसरे दिन ‘राजतरंगिणी कार्यशाला’ आयोजित हुई, जिसका उद्घाटन राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के अध्यक्ष प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे ने किया। यह कार्यशाला एक अनोखी साहित्यिक परियोजना की शुरुआत है, जिसमें भारत के चुने हुए लेखक कल्हण की ‘राजतरंगिणी’ के प्रमुख ऐतिहासिक पात्रों को किशोर पाठकों के लिए उपन्यास के रूप में पुनः प्रस्तुत करेंगे। देशभर से आए प्रतिष्ठित लेखकों ने अपनी प्रारंभिक पांडुलिपियाँ प्रस्तुत कीं और रचनात्मक चर्चाओं में भाग लिया। इस अवसर पर एनबीटी के मुख्य संपादक एवं संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम ने लेखकों को लेखन-शैली, संरचना और पाठकों से जुड़ाव पर ध्यान केंद्रित करने की सलाह दी।

महोत्सव में ‘एक भारत श्रेष्ठ भारत’ के अंतर्गत हुए ‘तमिल-कश्मीरी संवाद’ में दो समूह-चर्चाओं का आयोजन हुआ, जिसमें वक्ताओं ने विभिन्न युगों और भौगोलिक क्षेत्रों में फैली आध्यात्मिक विभूतियों के जीवन और विरासत पर चर्चा की। इस संवाद ने तमिलनाडु और कश्मीर के बीच एक अनूठा काव्यात्मक और आध्यात्मिक पुल निर्मित किया। इन चर्चाओं में तमिल और कश्मीरी साहित्य के विशेषज्ञ प्रो. चेल्लापेरुमल, प्रो. सज्जाद अहमद वानी, प्रो. डी. उमादेवी, प्रो. मास्टर शोएब अली और प्रो. रिंकू पंवार शामिल रहे।

चिनार पुस्तक महोत्सव 2025 में प्रो. मिलिंद सुधाकर मराठे (अध्यक्ष, एनबीटी, इंडिया) ने पहली बार हो रही गोजरी अनुवाद तीन दिवसीय कार्यशाला का उद्घाटन किया। गोजरी और जम्मू-कश्मीर के लिए यह ऐतिहासिक क्षण था। इस अवसर पर न्यास के मुख्य संपादक और संयुक्त निदेशक श्री कुमार विक्रम ने बताया कि यह एनबीटी द्वारा आयोजित पहली गोजरी अनुवाद कार्यशाला है, जिसमें द्विभाषी पुस्तकें तैयार करने की योजना है। 15 समर्पित अनुवादकों और दो विशेषज्ञ मार्गदर्शकों के साथ इस महत्वपूर्ण पहल के साथ गोजरी साहित्य की समृद्ध दुनिया को और बड़े पाठक वर्गसमूह तक पहुँचने की राह आसान करेगी।

बच्चों के लिए बनाये गए ‘चिल्ड्रंस कॉर्नर’ में रचनात्मकता, कल्पना और स्थानीय सांस्कृतिक धरोहर का उत्सव देखने को मिला। प्रसिद्ध कलाकार मलिक मुख्तार द्वारा ली गई कैलिग्राफी कार्यशाला में बच्चों को उर्दू की सुंदर लेखन कला से परिचय करवाया गया। उस्ताद गुलजार गनई और गुलाम अहमद सोफी जैसे कलाकारों की संगीत प्रस्तुतियों और साकिब व उनकी टीम की नाट्य प्रस्तुति ने कश्मीरी कला, संगीत और रंगमंच का समृद्ध चित्र प्रस्तुत किया। युवा कलाकारों ने ‘भारत इन स्पेस’ थीम पर चित्रांकन प्रतियोगिता में भाग लिया। वहीं पारंपरिक कठपुतली शो ने बच्चों और बड़ों, दोनों का दिल जीत लिया।

‘साइबर सुरक्षा : डिजिटल युग में आपकी ढाल’ विषय पर हुई चर्चा में साइबर सिक्योरिटी एक्सपर्ट श्री अमित दुबे ने उपयोगी रणनीतियों और टूल्स के बारे में विस्तार से बताया। सत्र का संचालन श्री मनोज कुमार पंडिता ने किया। यह सत्र डिजिटल युग में सतर्कता और जागरूकता की आवश्यकता को रेखांकित करने वाला रहा। ब्रिगेडियर सुशील तंवर द्वारा लिखित पुस्तक ‘मुखबिर’ पर हुई गहन चर्चा ने विश्वास, संघर्ष और संवेदनशील क्षेत्रों की वास्तविकता पर प्रकाश डाला। चर्चा का संचालन जफर चौधरी ने किया।

200 से अधिक प्रकाशक, विभिन्न भारतीय भाषाओं की पुस्तकों के साथ इस आयोजन में शामिल हुए। अंग्रेजी, हिंदी, उर्दू, कश्मीरी और अन्य भारतीय भाषाओं एवं द्विभाषी पुस्तकों से लेकर क्षेत्रीय साहित्य और शैक्षणिक पुस्तकों तथा डिजिटल सामग्री से युक्त चिनार पुस्तक महोत्सव ने सभी आयु वर्गों के आगंतुकों को मंत्रमुग्ध कर दिया। इस पुस्तक महोत्सव में आए पाठकों एवं छात्रों की बड़ी संख्या ने इसकी सफलता को परिभाषित किया।

RNI NO. DELHIN / 2016 / 68219

# मनोरंजन, ज्ञान और जिज्ञासा की अनूठी दुनिया!

**राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत के हिंदी भाषा पर उत्कृष्ट प्रकाशन**

## गांधी और हिंदी

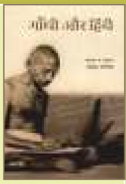

*संच. एवं संपा.* : **राकेश पाण्डेय**

गांधी जी ने भारत की आजादी के बाद हिंदी का समर्थन किया और यहाँ तक कह दिया कि दुनिया से कह दो कि गांधी को अंग्रेजी नहीं आती। एक विशिष्ट पुस्तक, जो किसी संदर्भ-ग्रंथ से कम नहीं। हिंदी के संबंध में गांधी के विचारों का एक अद्‌भुत संकलन।

**पृ. 474; रु. 480.00**

## गांधी : भाषा-लिपि विचार-कोश

*संपा.* : **कमल किशोर गोयनका**

गांधी जी एक गुजराती भाषी, अंग्रेजी के अच्छे जानकार तथा हिंदी और भारतीय भाषाओं के हितैषी, अनुरागी और पैरोकार थे। प्रस्तुत पुस्तक हिंदी, अंग्रेजी सहित अनेक भारतीय भाषाओं तथा लिपि संबंधी गांधी जी के द्वारा समय-समय पर लिखित और दिये गए विचारों का संभवतः अब तक का सबसे बड़ा उपक्रम है।

**पृ. 324; रु. 580.00**

## राष्ट्रभाषा और भारत-भारती

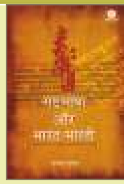

**आचार्य रघुवीर**

राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को सर्वमान्य एवं सर्वग्राह्य बनाने तथा देवनागरी लिपि को अपनाने के राष्ट्रवादी विचार के साथ ही भारत के आस-पास के पूर्वीय देशों, क्षेत्रों, यथा– इंडोनेशिया, बोर्नियो, कम्बुज, थाईलैंड आदि की विद्वान लेखक द्वारा बीती सदी के 50 के दशक के आस-पास की गई यात्राओं तथा वहाँ एक 'लघु भारत' को देखे जाने के लेखकीय अनुभवों-संस्मरणों का संकलन है यह पुस्तक।

**पृ. 200; रु. 215.00**

## राजभाषा के रूप में हिंदी

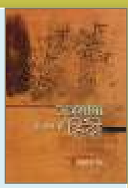

**निशान्त जैन**

राजभाषा के रूप में हिंदी का क्या अर्थ, अवधारणा और स्वरूप है; इसके विकास, क्षेत्र और आयाम तथा इसकी सांविधानिक और वैधानिक स्थिति क्या है आदि के संबंध में यहाँ सम्यक विचार किया गया है।

**पृ. 98; रु. 130.00**

## राष्ट्रीय एकता और हिंदी भाषा

**रमेश पोखरियाल 'निशंक'**

राष्ट्रभाषा हिंदी के विभिन्न आयामों, पक्षों और पहलुओं को समेटती दस अध्यायों से युक्त इस पुस्तक में हिंदी की गौरवशाली विकास-यात्रा, स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी की भूमिका, भारतीय संविधान में हिंदी की स्थिति, मीडिया में हिंदी, राष्ट्रीय एकता में हिंदी का अवदान, विश्व फलक पर हिंदी की अवस्थिति तथा राजभाषा के रूप में हिंदी आदि अध्यायों के माध्यम से विस्तृत रूप से विश्लेषित किया गया है।

**पृ. 166; रु. 225.00**

## सरनामी हिंदी : हिंदी का विश्व फलक

**विमलेश कांति वर्मा**
**भावना सक्सैना**

इस पुस्तक में सूरीनाम के विशेष संदर्भ में 'सरनामी हिंदी', जो इन देशों के भारतवंशियों की मिश्रित और अपभ्रंशित हिंदी है, के फैलाव और विस्तार के संबंध में बताया गया है। प्रवासी हिंदी-रूप 'सरनामी' पर हिंदी में संभवतः यह पहली ही पुस्तक है।

**पृ. 262; रु. 300.00**

## हिंदी वैश्विक आयाम

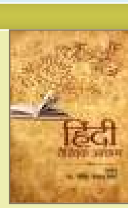

*संपादन व संकलन* :
**प्रो. गोविंद प्रसाद शर्मा**

प्रस्तुत पुस्तक 'हिंदी : वैश्विक आयाम' में देश-विदेश में मौजूद हिंदी के मूर्धन्य विद्वानों के लेखों को संकलित किया गया है। ये लेख वर्तमान में हिंदी की दशा-दिशा को प्रदर्शित करते हैं।

**पृ. 180; रु. 245.00**

nbt.india
एकः सूते सकलम्

# राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार

5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070
**फोन** : 011-26707761 ● **ई-मेल** : nro.nbt@nic.in
**वेबसाइट** : www.nbtindia.gov.in